श्रीसीतारामाभ्यां नमः

रामायण-प्रथमा-परीक्षा पाठ्य-पुस्तक

(रामचरितमानस अरण्यकाण्ड तथा सुन्दरकाण्ड

एवं

दोहावलीके १ से ४० दोहेतक अनुवादसहित)

गीताप्रेस, गोरखपुर

0152,1J34,1 0६९२
H6.3
तुलसीदास
राम चरित मानस खंड 3
२९।५८२

H6·3

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

१८ २६/५/८२

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

0152,1J34;1
H6.3

संवत् २००१ प्रथम संस्करण ५,०००
संवत् २००३ द्वितीय संस्करण ५,०००

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक......0675......
दिनांक......5/6......

मूल्य ।=) छः आना

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

तृतीय सोपान

(अरण्यकाण्ड)

श्लोक

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम् ।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शङ्करं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूपप्रियम् ॥ १ ॥

धर्मरूपी वृक्षके मूल, विवेकरूपी समुद्रको आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमलके [विकसित करनेवाले] सूर्य, पापरूपी घोर अन्धकारको निश्चय ही मिटानेवाले, तीनों तापोंको हरनेवाले, मोहरूपी बादलोंके समूहको छिन्न-भिन्न करनेकी विधि (क्रिया) में आकाशसे उत्पन्न पवन-स्वरूप, ब्रह्माजीके वंशज (आत्मज) तथा कलङ्कनाशक, महाराज श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय श्रीशङ्करजीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥ २ ॥

जिनका शरीर जलयुक्त मेघोंके समान सुन्दर (श्यामवर्ण) एवं आनन्दघन है, जो सुन्दर [वल्कलका] पीतवस्त्र धारण किये हैं, जिनके हाथोंमें बाण और धनुष हैं, कमर उत्तम तरकसके भारसे सुशोभित है, कमलके समान विशाल नेत्र हैं और मस्तकपर जटाजूट धारण किये हैं, उन अत्यन्त शोभायमान श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीसहित मार्गमें चलते हुए आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ ॥ २ ॥

सो०—उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति ॥

हे पार्वती ! श्रीरामजीके गुण गूढ़ हैं; पण्डित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं। परन्तु जो भगवान्‌से विमुख हैं और जिनका धर्ममें प्रेम नहीं है, वे महामूढ़ [उन्हें सुनकर] मोहको प्राप्त होते हैं।

चौ०—पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥१॥

पुरवासियोंके और भरतजीके अनुपम और सुन्दर प्रेमका मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार गान किया। अब देवता, मनुष्य और मुनियोंके मनको भानेवाले प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वे अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनो, जिन्हें वे वनमें कर रहे हैं ॥ १ ॥

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए ॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर ॥२॥

एक बार सुन्दर फूल चुनकर श्रीरामजीने अपने हाथोंसे भाँति-भाँतिके गहने बनाये और सुन्दर स्फटिकशिलापर बैठे हुए प्रभुने आदरके साथ वे गहने श्रीसीताजीको पहनाये ॥ २ ॥

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा ॥३॥

देवराज इन्द्रका मूर्ख पुत्र जयन्त कौएका रूप धरकर श्रीरघुनाथजीका बल देखना चाहता है। जैसे महान् मन्दबुद्धि चींटी समुद्रका थाह पाना चाहती हो ॥ ३ ॥

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥४॥

वह मूढ़, मन्दबुद्धि कारणसे (भगवान्‌के बलकी परीक्षा करनेके लिये) बना हुआ कौआ सीताजीके चरणोंमें चोंच मारकर भागा। जब रक्त बह चला, तब श्रीरघुनाथजीने जाना और धनुषपर सींक (सरकंडे)का बाण सन्धान किया॥४॥

दो०—अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह॥१॥

श्रीरघुनाथजी, जो अत्यन्त ही कृपालु हैं और जिनका दीनोंपर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणोंके घर मूर्ख जयन्तने आकर छल किया॥१॥

चौ०—प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥१॥

मन्त्रसे प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। वह अपना असली रूप धरकर पिता इन्द्रके पास गया। पर श्रीरामजीका विरोधी जानकर इन्द्रने उसको नहीं रक्खा॥१॥

भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥२॥

तब वह निराश हो गया, उसके मनमें भय उत्पन्न हो गया। जैसे दुर्वासा ऋषिको चक्रसे भय हुआ था। वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकोंमें थका हुआ और भय-शोकसे व्याकुल होकर भागता फिरा॥२॥

काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥३॥

[पर रखना तो दूर रहा] किसीने उसे बैठनेतकके लिये नहीं कहा। श्रीरामजीके द्रोहीको कौन रख सकता है? [काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़! सुनिये, उसके लिये माता मृत्युके समान, पिता यमराजके समान और अमृत विषके समान हो जाता है॥३॥

मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥४॥

मित्र सैकड़ों शत्रुओंकी-सी करनी करने लगता है। देवनदी गङ्गाजी उसके लिये वैतरणी (यमपुरीकी नदी) हो जाती हैं। हे भाई! सुनिये, जो श्रीरघुनाथजीके विमुख होता है, समस्त जगत् उसके लिये अग्निसे भी अधिक गरम (जलानेवाला) हो जाता है॥ ४॥

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही॥५॥

नारदजीने जयन्तको व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गयी, क्योंकि संतोंका चित्त बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे [समझाकर] तुरंत श्रीरामजीके पास भेज दिया। उसने [जाकर] पुकारकर कहा—हे शरणागतके हितकारी! मेरी रक्षा कीजिये॥ ५॥

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहिं पाई॥६॥

आतुर और भयभीत जयन्तने जाकर श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये [और कहा—] हे दयालु रघुनाथजी! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतुलित बल और आपकी अतुलित प्रभुता [सामर्थ्य] को मैं मन्दबुद्धि जान नहीं पाया था॥ ६॥

निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी॥७॥

अपने किये हुए कर्मसे उत्पन्न हुआ फल मैंने पा लिया। अब हे प्रभु! मेरी रक्षा कीजिये! मैं आपकी शरण तककर आया हूँ। [शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! कृपालु श्रीरघुनाथजीने उसकी अत्यन्त आर्त्त (दुःखभरी) वाणी सुनकर उसे एक आँखका काना करके छोड़ दिया॥ ७॥

सो०—कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥२॥

उसने मोहवश द्रोह किया था, इसलिये यद्यपि उसका वध ही उचित था, पर प्रभुने कृपा करके उसे छोड़ दिया। श्रीरामजीके समान कृपालु और कौन होगा? ॥ २ ॥

चौ०—रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना ॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना ॥१॥

चित्रकूटमें बसकर श्रीरघुनाथजीने बहुत-से चरित्र किये, जो कानोंको अमृतके समान [प्रिय] हैं। फिर (कुछ समय पश्चात्) श्रीरामजीने मनमें ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब लोग जान गये हैं, इससे [यहाँ] बड़ी भीड़ हो जायगी ॥ १ ॥

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई ॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ ॥२॥

[इसलिये] सब मुनियोंसे विदा लेकर सीताजीसहित दोनों भाई चले। जब प्रभु अत्रिजीके आश्रममें गये, तो उनका आगमन सुनते ही महामुनि हर्षित हो गये ॥ २ ॥

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए ॥
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए ॥३॥

शरीर पुलकित हो गया, अत्रिजी उठकर दौड़े। उन्हें दौड़े आते देखकर श्रीरामजी और भी शीघ्रतासे चले आये। दण्डवत् करते हुए ही श्रीरामजीको [उठाकर] मुनिने हृदयसे लगा लिया और प्रेमाश्रुओंके जलसे दोनों जनोंको (दोनों भाइयोंको) नहला दिया ॥ ३ ॥

देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने ॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए ॥४॥

श्रीरामजीकी छवि देखकर मुनिके नेत्र शीतल हो गये; तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रममें ले आये। पूजन करके, सुन्दर वचन कहकर मुनिने मूल और फल दिये, जो प्रभुके मनको बहुत रुचे ॥ ४ ॥

सो०—प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत ॥ ३ ॥

प्रभु आसनपर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देखकर परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—॥ ३ ॥

छं०—नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं॥
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं॥ १ ॥

हे भक्तवत्सल! हे कृपालु! हे कोमल स्वभाववाले! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषोंको अपना परमधाम देनेवाले आपके चरणकमलोंको मैं भजता हूँ॥ १ ॥

निकाम श्याम सुंदरं। भवाम्बुनाथ मंदरं॥
प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं॥ २ ॥

आप नितान्त सुन्दर, श्याम, संसार (आवागमन) रूपी समुद्रको मथनेके लिये मन्दराचलरूप, फूले हुए कमलके समान नेत्रोंवाले और मद आदि दोषोंसे छुड़ानेवाले हैं॥ २ ॥

प्रलंब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं॥
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकं॥ ३ ॥

हे प्रभो! आपकी लंबी भुजाओंका पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय (बुद्धिके परे अथवा असीम) है। आप तरकस और धनुष-बाण धारण करनेवाले, तीनों लोकोंके स्वामी, ॥ ३ ॥

दिनेश वंश मंडनं। महेश चाप खंडनं॥
मुनींद्र संत रंजनं। सुरारि वृंद भंजनं॥ ४ ॥

सूर्यवंशके भूषण, महादेवजीके धनुषको तोड़नेवाले, मुनिराजों और संतोंको आनन्द देनेवाले तथा देवताओंके शत्रु असुरोंके समूहका नाश करनेवाले हैं॥ ४ ॥

मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं॥
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं॥ ५ ॥

आप कामदेवके शत्रु महादेवजीके द्वारा वन्दित, ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित, विशुद्ध ज्ञानमय विग्रह और समस्त दोषोंको नष्ट करनेवाले हैं॥ ५ ॥

नमामि इंदिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं॥
भजे सशक्ति सानुजं। शची पति प्रियानुजं॥ ६॥

हे लक्ष्मीपते! हे सुखोंकी खान और सत्पुरुषोंकी एकमात्र गति! मैं आपको नमस्कार करता हूँ! हे शचीपति (इन्द्र) के प्रिय छोटे भाई (वामनजी)! स्वरूपा-शक्ति श्रीसीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी-सहित आपको मैं भजता हूँ॥ ६॥

त्वदंघ्रि मूल ये नराः। भजंति हीन मत्सराः॥
पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले॥ ७॥

जो मनुष्य मत्सर (डाह) रहित होकर आपके चरणकमलोंका सेवन करते हैं, वे तर्क-वितर्क (अनेक प्रकारके सन्देह) रूपी तरंगोंसे पूर्ण संसाररूपी समुद्रमें नहीं गिरते (आवागमनके चक्करमें नहीं पड़ते)॥७॥

विविक्त वासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा॥
निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांति ते गतिं स्वकं॥ ८॥

जो एकान्तवासी पुरुष मुक्तिके लिये इन्द्रियादिका निग्रह करके (उन्हें विषयोंसे हटाकर) प्रसन्नतापूर्वक आपको भजते हैं, वे स्वकीय गतिको (अपने स्वरूपको) प्राप्त होते हैं॥ ८॥

तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥ ९॥

उन (आप) को जो एक (अद्वितीय), अद्भुत (मायिक जगत्से विलक्षण), प्रभु (सर्वसमर्थ), इच्छारहित, ईश्वर (सबके स्वामी), व्यापक, जगद्गुरु, सनातन (नित्य), तुरीय (तीनों गुणोंसे सर्वथा परे) और केवल (अपने स्वरूपमें स्थित) हैं॥ ९॥

भजामि भाव वल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं॥
स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं॥ १०॥

[तथा] जो भावप्रिय, कुयोगियों (विषयी पुरुषों) के लिये अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष (अर्थात् उनकी समस्त

कामनाओंको पूर्ण करनेवाले), सम (पक्षपातरहित) और सदा सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हैं, मैं निरन्तर भजता हूँ ॥ १० ॥

अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा पतिं ॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥ ११ ॥

हे अनुपम सुन्दर ! हे पृथ्वीपति ! हे जानकीनाथ ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरणकमलोंकी भक्ति दीजिये ॥ ११ ॥

पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं ॥
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्ति संयुताः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य इस स्तुतिको आदरपूर्वक पढ़ते हैं, वे आपकी भक्तिसे युक्त होकर आपके परमपदको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥

दो०—बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि ॥ ४ ॥

मुनिने [इस प्रकार] विनती करके और फिर सिर नवाकर, हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ ! मेरी बुद्धि आपके चरणकमलोंको कभी न छोड़े ॥ ४ ॥

चौ०—अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता ॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई ॥१॥

फिर परम शीलवती और विनम्र श्रीसीताजी अत्रिजीकी पत्नी अनसूयाजीके चरण पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषिपत्नीके मनमें बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशिष देकर सीताजीको पास बैठा लिया—॥ १ ॥

दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए ॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी ॥२॥

और उन्हें ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये, जो नित्य-नये निर्मल और सुहावने बने रहते हैं। फिर ऋषिपत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणीसे स्त्रियोंके कुछ धर्म बखानकर कहने लगीं—॥ २ ॥

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥३॥

हे राजकुमारी! सुनिये—माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं, परन्तु ये सब एक सीमातक ही [सुख] देनेवाले हैं। परन्तु हे जानकी! पति तो [मोक्षरूप] असीम [सुख] देनेवाला है। वह स्त्री अधम है जो ऐसे पतिकी सेवा नहीं करती ॥ ३ ॥

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी ॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥४॥

धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री, इन चारोंकी विपत्तिके समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन—॥ ४ ॥

ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥५॥

ऐसे भी पतिका अपमान करनेसे स्त्री यमपुरमें भाँति-भाँतिके दुःख पाती है। शरीर, वचन और मनसे पतिके चरणोंमें प्रेम करना, स्त्रीके लिये, बस, यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है ॥५॥

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥६॥

जगत्में चार प्रकारकी पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणीकी पतिव्रताके मनमें ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत्में [मेरे पतिको छोड़कर] दूसरा पुरुष स्वप्नमें भी नहीं है ॥ ६ ॥

मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें ॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥७॥

मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता पराये पतिको कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो। (अर्थात् समान अवस्थावालेको वह भाईके रूपमें देखती है, बड़ेको पिताके रूपमें और छोटेको पुत्रके रूपमें देखती

है।) जो धर्मको विचारकर और अपने कुलकी मर्यादा समझकर बची रहती है वह निकृष्ट (निम्न श्रेणीकी) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं ॥ ७ ॥

बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई ॥८॥

और जो स्त्री मौका न मिलनेसे या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत्में उसे अधम स्त्री जानना। पतिको धोखा देनेवाली जो स्त्री पराये पतिसे रति करती है, वह तो सौ कल्पतक रौरव नरकमें पड़ी रहती है ॥ ८ ॥

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई ॥९॥

क्षणभरके सुखके लिये जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मोंके दुःखको नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी। जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रत धर्मको ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गतिको प्राप्त करती है ॥९॥

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई ॥१०॥

किन्तु जो पतिके प्रतिकूल चलती है वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानीमें) विधवा हो जाती है ॥ १० ॥

सो०—सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥५(क)॥

स्त्री जन्मसे ही अपवित्र है; किन्तु पतिकी सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। [पातिव्रतधर्मके कारण ही] आज भी 'तुलसीजी' भगवान्को प्रिय हैं और चारों वेद उनका यश गाते हैं ॥ ५ (क) ॥

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित ॥५(ख)॥

हे सीता ! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत-धर्मका पालन करेंगी ! तुम्हें तो श्रीरामजी प्राणोंके समान प्रिय हैं; यह (पातिव्रत-धर्मकी) कथा तो मैंने संसारके हितके लिये कही है ॥ ५ (ख) ॥

चौ०—सुनि जानकी परम सुखु पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा ॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना ॥१॥

जानकीजीने सुनकर परम सुख पाया और आदरपूर्वक उनके चरणोंमें सिर नवाया। तब कृपाकी खान श्रीरामजीने मुनिसे कहा—आज्ञा हो तो अब दूसरे वनमें जाऊँ ॥ १ ॥

संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥
धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी ॥२॥

मुझपर निरन्तर कृपा करते रहियेगा और अपना सेवक जानकर स्नेह न छोड़ियेगा। धर्मधुरन्धर प्रभु श्रीरामजीके वचन सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेमपूर्वक बोले—॥ २ ॥

जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी ॥
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे ॥३॥

ब्रह्मा, शिव और सनकादि सभी परमार्थवादी (तत्त्ववेत्ता) जिनकी कृपा चाहते हैं, हे रामजी! आप वही निष्काम पुरुषोंके भी प्रिय और दीनोंके बन्धु भगवान् हैं जो इस प्रकार कोमल वचन बोल रहे हैं ॥ ३ ॥

अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुम्हहि सब देव बिहाई ॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ता कर सील कस न अस होई ॥४॥

अब मैंने लक्ष्मीजीकी चतुराई समझी, जिन्होंने सब देवताओंको छोड़कर आपहीको भजा। जिसके समान [सब बातोंमें] अत्यन्त बड़ा और कोई नहीं है, उसका शील भला ऐसा क्यों न होगा? ॥ ४ ॥

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक सरीरा ॥५॥

मैं किस प्रकार कहूँ कि हे स्वामी! आप अब जाइये। हे नाथ! आप अन्तर्यामी हैं, आप ही कहिये। ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभुको देखने लगे। मुनिके नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बह रहा है और शरीर पुलकित है ॥ ५ ॥

छं०—तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए ॥

जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसिदिन दास तुलसी गावई॥

मुनि अत्यन्त प्रेमसे पूर्ण हैं; उनका शरीर पुलकित है और नेत्रोंको श्रीरामजीके मुख-कमलमें लगाये हुए हैं। [मनमें विचार रहे हैं कि] मैंने ऐसे कौन-से जप-तप किये थे जिसके कारण मन, ज्ञान, गुण और इन्द्रियोंसे परे प्रभुके दर्शन पाये। जप, योग और धर्मसमूहसे मनुष्य अनुपम भक्तिको पाता है। श्रीरघुवीरके पवित्र चरित्रको तुलसीदास रात-दिन गाता है।

दो०–कलि मल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥६(क)॥

श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर यश कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला, मनको दमन करनेवाला और सुखका मूल है। जो लोग इसे आदरपूर्वक सुनते हैं उनपर श्रीरामजी प्रसन्न रहते हैं॥ ६ (क)॥

सो०–कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥६(ख)॥

यह कठिन कलिकाल पापोंका खजाना है; इसमें न धर्म है, न ज्ञान है और न योग तथा जप ही है। इसमें तो जो लोग सब भरोसोंको छोड़कर श्रीरामजीको ही भजते हैं, वे ही चतुर हैं॥ ६ (ख)॥

चौ०–मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥
आगें राम अनुज पुनि पाछें। मुनि बर बेष बने अति काछें॥१॥

मुनिके चरणकमलोंमें सिर नवाकर देवता, मनुष्य और मुनियोंके स्वामी श्रीरामजी वनको चले। आगे श्रीरामजी हैं और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं। दोनों ही मुनियोंका सुन्दर वेष बनाये अत्यन्त सुशोभित हैं॥१॥

उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥२॥

दोनोंके बीचमें श्रीजानकीजी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीवके बीच माया हो। नदी, वन, पर्वत और दुर्गम घाटियाँ, सभी अपने स्वामीको पहचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं॥ २॥

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥
मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता॥३॥

जहाँ-जहाँ देव श्रीरघुनाथजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ बादल आकाशमें छाया करते जाते हैं। रास्तेमें जाते हुए विराध राक्षस मिला। सामने आते ही श्रीरघुनाथजीने उसे मार डाला॥ ३॥

तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा॥४॥

[श्रीरामजीके हाथसे मरते ही] उसने तुरंत सुन्दर (दिव्य) रूप प्राप्त कर लिया। दुखी देखकर प्रभुने उसे अपने परम धामको भेज दिया। फिर वे सुन्दर छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीके साथ वहाँ आये जहाँ मुनि शरभङ्गजी थे॥ ४॥

दो०—देखि राम मुख पंकज मुनिवर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग॥ ७॥

श्रीरामचन्द्रजीका मुख-कमल देखकर मुनिश्रेष्ठके नेत्ररूपी भौंरे अत्यन्त आदरपूर्वक उसका [मकरन्दरस] पान कर रहे हैं। शरभङ्गजीका जन्म धन्य है॥ ७॥

चौ०—कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा॥१॥

मुनिने कहा—हे कृपालु रघुवीर! हे शंकरजीके मनरूपी मानसरोवर-के राजहंस! मैं ब्रह्मलोकको जा रहा था। [इतनेमें] कानोंसे सुना कि श्रीरामजी वनमें आवेंगे॥ १॥

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥२॥

तबसे मैं दिन-रात आपकी राह देखता रहा हूँ। अब आज प्रभुको देखकर मेरी छाती शीतल हो गयी। हे नाथ! मैं सब साधनोंसे हीन हूँ। आपने अपना दीन सेवक जानकर मुझपर कृपा की है॥ २॥

सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥३॥

हे देव! यह कुछ मुझपर आपका एहसान नहीं है। हे भक्त-मन-चोर! ऐसा करके आपने अपने प्रणकी ही रक्षा की है। अब इस दीनके कल्याणके लिये तबतक यहाँ ठहरिये जबतक मैं शरीर छोड़कर आपसे [आपके धाममें न] मिलूँ॥ ३॥

जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा॥४॥

योग, यज्ञ, जप, तप जो कुछ व्रत आदि भी मुनिने किया था, सब प्रभुको समर्पण करके बदलेमें भक्तिका वरदान ले लिया। इस प्रकार [दुर्लभ भक्ति प्राप्त करके फिर] चिता रचकर मुनि शरभङ्गजी हृदयसे सब आसक्ति छोड़कर उसपर जा बैठे॥ ४॥

दो०—सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम॥ ८॥

हे नीले मेघके समान श्याम शरीरवाले सगुणरूप श्रीरामजी! सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित प्रभु (आप) निरन्तर मेरे हृदयमें निवास कीजिये॥ ८॥

चौ०—अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ॥१॥

ऐसा कहकर शरभङ्गजीने योगाग्निसे अपने शरीरको जला डाला और श्रीरामजीकी कृपासे वे वैकुण्ठको चले गये। मुनि भगवान्‌में लीन इसलिये नहीं हुए कि उन्होंने पहले ही भेद-भक्तिका वर ले लिया था॥ १॥

रिषि निकाय मुनिबर गति देखी। सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी॥
अस्तुति करहिं सकल मुनिबृंदा। जयति प्रनत हित करुना कंदा॥२॥

ऋषिसमूह मुनिश्रेष्ठ शरभङ्गजीकी यह [दुर्लभ] गति देखकर अपने हृदयमें विशेषरूपसे सुखी हुए। समस्त मुनिवृन्द श्रीरामजीकी स्तुति कर रहे

हैं [और कह रहे हैं] शरणागतहितकारी करुणाकन्द (करुणाके मूल) प्रभुकी जय हो!॥२॥

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे॥
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥३॥

फिर श्रीरघुनाथजी आगे वनमें चले। श्रेष्ठ मुनियोंके बहुत-से समूह उनके साथ हो लिये। हड्डियोंका ढेर देखकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी दया आयी, उन्होंने मुनियोंसे पूछा॥३॥

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥४॥

[मुनियोंने कहा—] हे स्वामी! आप सर्वदर्शी (सर्वज्ञ) और अन्तर्यामी (सबके हृदयकी जाननेवाले) हैं। जानते हुए भी [अनजानकी तरह] हमसे कैसे पूछ रहे हैं? राक्षसोंके दलोंने सब मुनियोंको खा डाला है [ये सब उन्हींकी हड्डियोंके ढेर हैं]। यह सुनते ही श्रीरघुवीरके नेत्रोंमें जल छा गया (उनकी आँखोंमें करुणाके आँसू भर आये)॥४॥

दो०—निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥९॥

श्रीरामजीने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वीको राक्षसोंसे रहित कर दूँगा। फिर समस्त मुनियोंके आश्रमोंमें जा-जाकर उनको [दर्शन एवं सम्भाषणका] सुख दिया॥९॥

चौ०—मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥१॥

मुनि अगस्त्यजीके एक सुतीक्ष्ण नामक सुजान (ज्ञानी) शिष्य थे। उनकी भगवान्‌में प्रीति थी। वे मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके चरणोंके सेवक थे। उन्हें स्वप्नमें भी किसी दूसरे देवताका भरोसा नहीं था॥१॥

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥२॥

उन्होंने ज्यों ही प्रभुका आगमन कानोंसे सुन पाया, त्यों ही अनेक प्रकारके मनोरथ करते हुए वे आतुरता (शीघ्रता) से दौड़ चले। हे विधाता! क्या दीनबन्धु श्रीरघुनाथजी मुझ-जैसे दुष्टपर भी दया करेंगे? ॥ २ ॥

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं ॥३॥

क्या स्वामी श्रीरामजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मुझसे अपने सेवककी तरह मिलेंगे? मेरे हृदयमें दृढ़ विश्वास नहीं होता; क्योंकि मेरे मनमें भक्ति, वैराग्य या ज्ञान कुछ भी नहीं है ॥ ३ ॥

नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा ॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की ॥४॥

मैंने न तो सत्संग, योग, जप अथवा यज्ञ ही किये हैं और न प्रभुके चरण-कमलोंमें मेरा दृढ़ अनुराग ही है। हाँ, दयाके भण्डार प्रभुकी एक बान है कि जिसे किसी दूसरेका सहारा नहीं है, वह उन्हें प्रिय होता है ॥४॥

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन ॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥५॥

[भगवान्‌की इस बानका स्मरण आते ही मुनि आनन्दमग्न होकर मन-ही-मन कहने लगे—] अहा! भव-बन्धनसे छुड़ानेवाले प्रभुके मुखारविन्दको देखकर आज मेरे नेत्र सफल होंगे। [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! ज्ञानी मुनि प्रेममें पूर्णरूपसे निमग्न हैं। उनकी वह दशा कही नहीं जाती ॥ ५ ॥

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥६॥

उन्हें दिशा-विदिशा (दिशाएँ और उनके कोण आदि) और रास्ता, कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मैं कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ, यह भी नहीं जानते (इसका भी ज्ञान नहीं है)। वे कभी पीछे घूमकर फिर आगे चलने लगते हैं और कभी [प्रभुके] गुण गा-गाकर नाचने लगते हैं ॥ ६ ॥

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई ॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ॥७॥

मुनिने प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली ! प्रभु (श्रीरामजी) वृक्षकी आड़में छिपकर [भक्तकी प्रेमोन्मत्त दशा] देख रहे हैं। मुनिका अत्यन्त प्रेम देखकर भवभय (आवागमनके भय) को हरनेवाले श्रीरघुनाथजी मुनिके हृदयमें प्रकट हो गये ॥ ७ ॥

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए ॥८॥

[हृदयमें प्रभुके दर्शन पाकर] मुनि बीच रास्तेमें अचल (स्थिर) होकर बैठ गये। उनका शरीर रोमाञ्चसे कटहलके फलके समान (कण्टकित) हो गया। तब श्रीरघुनाथजी उनके पास चले आये और अपने भक्तकी प्रेमदशा देखकर मनमें बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यानजनित सुख पावा ॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥९॥

श्रीरामजीने मुनिको बहुत प्रकारसे जगाया, पर मुनि नहीं जागे; क्योंकि उन्हें प्रभुके ध्यानका सुख प्राप्त हो रहा था। तब श्रीरामजीने अपने राज-रूपको छिपा लिया और उनके हृदयमें अपना चतुर्भुजरूप प्रकट किया ॥ ९ ॥

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें ॥
आगें देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा ॥१०॥

तब (अपने इष्ट-स्वरूपके अन्तर्धान होते ही) मुनि कैसे व्याकुल होकर उठे, जैसे श्रेष्ठ (मणिधर) सर्प मणिके बिना व्याकुल हो जाता है ! मुनिने अपने सामने सीताजी और लक्ष्मणजीसहित श्यामसुन्दरविग्रह सुखधाम श्रीरामजीको देखा ॥ १० ॥

परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी ॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई ॥११॥

प्रेममें मग्न हुए वे बड़भागी श्रेष्ठ मुनि लाठीकी तरह गिरकर श्रीरामजीके चरणोंमें लग गये। श्रीरामजीने अपनी विशाल भुजाओंसे पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेमसे हृदयसे लगा रक्खा ॥ ११ ॥

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला ॥
राम बदनु बिलोक मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा ॥१२॥

कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मुनिसे मिलते हुए ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो सोनेके वृक्षसे तमालका वृक्ष गले लगकर मिल रहा हो। मुनि निस्तब्ध खड़े हुए [टकटकी लगाकर] श्रीरामजीका मुख देख रहे हैं। मानो चित्रमें लिखकर बनाये गये हों ॥ १२ ॥

दो०–तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार ॥ १०॥

तब मुनिने हृदयमें धीरज धरकर बार-बार चरणोंको स्पर्श किया। प्रभुको अपने आश्रममें लाकर अनेक प्रकारसे उनकी पूजा की ॥ १० ॥

चौ०–कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी ॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी ॥१॥

मुनि कहने लगे—हे प्रभो! मेरी विनती सुनिये, मैं किस प्रकारसे आपकी स्तुति करूँ? आपकी महिमा अपार है और मेरी बुद्धि अल्प है। जैसे सूर्यके सामने जुगनूका उजाला! ॥ १ ॥

श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं ॥
पाणि चाप शर कटि तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं ॥२॥

हे नीलकमलकी मालाके समान श्याम शरीरवाले! हे जटाओंका मुकुट और मुनियोंके (वल्कल) वस्त्र पहने हुए, हाथोंमें धनुष-बाण लिये तथा कमरमें तरकस कसे हुए श्रीरामजी! मैं आपको निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः ॥
निशिचर करि वरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाजः ॥३॥

जो मोहरूपी घने वनको जलानेके लिये अग्नि हैं, संतरूपी कमलोंके

वनके प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्य हैं, राक्षसरूपी हाथियोंके समूहके पछाड़नेके लिये सिंह हैं, और भव (आवागमन) रूपी पक्षीके मारनेके लिये बाजरूप हैं, वे प्रभु सदा हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

अरुण नयन राजीव सुवेशं। सीता नयन चकोर निशेशं॥
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विशालं ॥४॥

हे लाल कमलके समान नेत्र और सुन्दर वेषवाले! सीताजीके नेत्ररूपी चकोरके चन्द्रमा, शिवजीके हृदयरूपी मानसरोवरके बालहंस, विशाल हृदय और भुजावाले श्रीरामचन्द्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कश तर्क विषादः॥
भव भंजन रंजन सुर यूथः। त्रातु सदा नो कृपा वरूथः ॥५॥

जो संशयरूपी सर्पको ग्रसनेके लिये गरुड़ हैं; अत्यन्त कठोर तर्कसे उत्पन्न होनेवाले विषादका नाश करनेवाले हैं, आवागमनको मिटानेवाले और देवताओंके समूहको आनन्द देनेवाले हैं, वे कृपाके समूह श्रीरामजी सदा हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महिभारं ॥६॥

हे निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप! हे ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंसे अतीत! हे अनुपम, निर्मल, सम्पूर्ण, दोषरहित, अनन्त एवं पृथ्वीका भार उतारनेवाले श्रीरामचन्द्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥

भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः॥
अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः ॥७॥

जो भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके बगीचे हैं; क्रोध, लोभ, मद और कामको डरानेवाले हैं; अत्यन्त ही चतुर और संसाररूपी समुद्रसे तरनेके लिये सेतुरूप हैं, वे सूर्यकुलकी ध्वजा श्रीरामजी सदा मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

अतुलित भुज प्रताप बल धामः। कलि मल विपुल विभंजन नामः॥
धर्म वर्म नर्मद गुण ग्रामः। संतत शं तनोतु मम रामः ॥८॥

जिनकी भुजाओंका प्रताप अतुलनीय है, जो बलके धाम हैं, जिनका नाम कलियुगके बड़े भारी पापोंका नाश करनेवाला है, जो धर्मके कवच (रक्षक) हैं और जिनके गुणसमूह आनन्द देनेवाले हैं; वे श्रीरामजी निरन्तर मेरे कल्याणका विस्तार करें ॥ ८ ॥

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी। सब के हृदयँ निरंतर बासी ॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी ॥९॥

यद्यपि आप निर्मल, व्यापक, अविनाशी और सबके हृदयमें निरन्तर निवास करनेवाले हैं, तथापि हे खरारि श्रीरामजी ! लक्ष्मणजी और सीताजीसहित वनमें विचरनेवाले आप इसी रूपमें मेरे हृदयमें निवास कीजिये ॥ ९ ॥

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी ॥
जो कोसल पति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना ॥१०॥

हे स्वामी ! आपको जो सगुण, निर्गुण और अन्तर्यामी जानते हों, वे जाना करें। मेरे हृदयको तो कोसलपति कमलनयन श्रीरामजी ही अपना घर बनावें ॥ १० ॥

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए ॥११॥

ऐसा अभिमान भूलकर भी न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्रीरघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। मुनिके वचन सुनकर श्रीरामजी मनमें बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनिको हृदयसे लगा लिया ॥ ११ ॥

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही ॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा ॥१२॥

[और कहा—] हे मुनि ! मुझे परम प्रसन्न जानो। जो वर माँगो, वही मैं तुम्हें दूँ। मुनि सुतीक्ष्णजीने कहा—मैंने तो वर कभी माँगा ही नहीं। मुझे समझ ही नहीं पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सत्य है (क्या मागूँ, क्या नहीं) ॥ १२ ॥

तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥१३॥

[अतः] हे रघुनाथजी! हे दासोंको सुख देनेवाले! आपको जो अच्छा लगे मुझे वही दीजिये। [श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मुनि!] तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञानके निधान हो जाओ ॥१३॥

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा॥१४॥

[तब मुनि बोले—] प्रभुने जो वरदान दिया वह तो मैंने पा लिया। अब मुझे जो अच्छा लगता है वह दीजिये—॥ १४॥

दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥११॥

हे प्रभो! हे श्रीरामजी! छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित धनुष-बाणधारी आप निष्काम (स्थिर) होकर मेरे हृदयरूपी आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति सदा निवास कीजिये॥ ११॥

चौ०—एवमस्तु करि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥
बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रम आएँ॥१॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) ऐसा उच्चारण कर लक्ष्मीनिवास श्रीरामचन्द्रजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषिके पास चले। [तब सुतीक्ष्णजी बोले—] गुरु अगस्त्यजीका दर्शन पाये और इस आश्रममें आये मुझे बहुत दिन हो गये॥ १॥

अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहसे द्वौ भाई॥२॥

अब मैं भी प्रभु (आप) के साथ गुरुजीके पास चलता हूँ। इसमें हे नाथ! आपपर मेरा कोई एहसान नहीं है। मुनिकी चतुरता देखकर कृपाके भण्डार श्रीरामजीने उनको साथ ले लिया और दोनों भाई हँसने लगे॥ २॥

पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥
तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥३॥

रास्तेमें अपनी अनुपम भक्तिका वर्णन करते हुए, देवताओंके राजराजेश्वर श्रीरामजी अगस्त्य मुनिके आश्रमपर पहुँचे। सुतीक्ष्ण तुरंत ही गुरु अगस्त्यजीके पास गये और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे—॥ ३॥

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥४॥

हे नाथ! अयोध्याके राजा दशरथजीके कुमार जगदाधार श्रीरामचन्द्रजी छोटे भाई (लक्ष्मणजी) और सीताजीसहित आपसे मिलने आये हैं, जिनका हे देव! आप रात-दिन जप करते रहते हैं॥ ४॥

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिए उर लाई॥ ५॥

यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरंत ही उठ दौड़े। भगवान्‌को देखते ही उनके नेत्रोंमें [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] जल भर आया। दोनों भाई मुनिके चरणकमलोंपर गिर पड़े। ऋषिने [उठाकर] बड़े प्रेमसे उन्हें हृदयसे लगा लिया॥ ५॥

सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥ ६॥

ज्ञानी मुनिने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उनको लाकर श्रेष्ठ आसनपर बैठाया। फिर बहुत प्रकारसे प्रभुकी पूजा करके कहा—मेरे समान भाग्यवान् आज दूसरा कोई नहीं है॥ ६॥

जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुखकंदा॥ ७॥

वहाँ जहाँतक (जितने भी) अन्य मुनिगण थे, सभी आनन्दकन्द श्रीरामजीके दर्शन करके हर्षित हो गये॥ ७॥

दो०—मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर॥१२॥

मुनियोंके समूहमें श्रीरामचन्द्रजी सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं (अर्थात् प्रत्येक मुनिको श्रीरामजी अपने ही सामने मुख करके बैठे दिखायी

देते हैं, और सब मुनि टकटकी लगाये उनके मुखको देख रहे हैं) । ऐसा जान पड़ता है मानो चकोरोंका समुदाय शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी ओर देख रहा हो ॥ १२ ॥

चौ०-तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं । तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ । ताते तात न कहि समुझायउँ ॥ १ ॥

तब श्रीरामजीने मुनिसे कहा—हे प्रभो ! आपसे तो कुछ छिपाव है नहीं; मैं जिस कारणसे आया हूँ, वह आप जानते ही हैं। इसीसे हे तात ! मैंने आपसे समझाकर कुछ नहीं कहा ॥ १ ॥

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही ॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी । पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥ २ ॥

हे प्रभो ! अब आप मुझे वही मन्त्र (सलाह) दीजिये, जिस प्रकार मैं मुनियोंके द्रोही राक्षसोंको मारूँ । प्रभुकी वाणी सुनकर मुनि मुसकराये और बोले—हे नाथ ! आपने क्या समझकर मुझसे यह प्रश्न किया है ? ॥ २ ॥

तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी । जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी ॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया । फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥ ३ ॥

हे पापोंका नाश करनेवाले ! मैं तो आपहीके भजनके प्रभावसे आपकी कुछ थोड़ी-सी महिमा जानता हूँ । आपकी माया गूलरके विशाल वृक्षके समान है, अनेकों ब्रह्माण्डोंके समूह ही जिसके फल हैं ॥ ३ ॥

जीव चराचर जंतु समाना । भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥
ते फल भच्छक कठिन कराला । तव भयँ डरत सदा सोउ काला ॥ ४ ॥

चर और अचर जीव [गूलरके फलके भीतर रहनेवाले छोटे-छोटे] जन्तुओंके समान उन [ब्रह्माण्डरूपी फलों] के भीतर बसते हैं और वे [अपने उस छोटे-से जगत्के सिवा] दूसरा कुछ नहीं जानते । उन फलोंका भक्षण करनेवाला कठिन और कराल काल है । वह काल भी सदा आपसे भयभीत रहता है ॥ ४ ॥

ते तुम्ह सकल लोकपति साईं । पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं ॥
यह बर मागउँ कृपानिकेता । बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता ॥ ५ ॥

उन्हीं आपने समस्त लोकपालोंके स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्यकी तरह प्रश्न किया। हे कृपाके धाम! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि आप श्रीसीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मेरे हृदयमें [सदा] निवास कीजिये॥५॥

अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता॥६॥

मुझे प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरणकमलोंमें अटूट प्रेम प्राप्त हो। यद्यपि आप अखण्ड और अनन्त ब्रह्म हैं, जो अनुभवसे ही जाननेमें आते हैं और जिनका संतजन भजन करते हैं; ॥ ६ ॥

अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूँछेहु रघुराई॥७॥

यद्यपि मैं आपके ऐसे रूपको जानता हूँ और उसका वर्णन भी करता हूँ, तो भी लौट-लौटकर मैं सगुण ब्रह्ममें (आपके इस सुन्दर स्वरूपमें) ही प्रेम मानता हूँ। आप सेवकोंको सदा ही बड़ाई दिया करते हैं, इसीसे हे रघुनाथजी! आपने मुझसे पूछा है ॥ ७ ॥

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥८॥

हे प्रभो! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है, उसका नाम पञ्चवटी है। हे प्रभो! आप दण्डकवनको [जहाँ पञ्चवटी है] पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ मुनि गौतमजीके कठोर शापको हर लीजिये ॥ ८ ॥

बास करहु तहँ रघुकुलराया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी निअराई॥९॥

हे रघुकुलके स्वामी! आप सब मुनियोंपर दया करके वहीं निवास कीजिये! मुनिकी आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजी वहाँसे चल दिये और शीघ्र ही पञ्चवटीके निकट पहुँच गये ॥ ९ ॥

दो०–गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परनगृह छाइ॥१३॥

वहाँ गृध्रराज जटायुसे भेंट हुई । उसके साथ बहुत प्रकारसे प्रेम बढ़ाकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गोदावरीजीके समीप पर्णकुटी छाकर रहने लगे ॥१३॥

चौ०–जब ते राम कीन्ह तहँ बासा । सुखी भए मुनि बीती त्रासा ॥
गिरि बन नदीं ताल छबि छाए । दिन दिन प्रति अति हौंहि सुहाए॥ १ ॥

जबसे श्रीरामजीने वहाँ निवास किया तबसे मुनि सुखी हो गये, उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और तालाब शोभासे छा गये । वे दिनों-दिन अधिक सुहावने [मालूम] होने लगे ॥ १ ॥

खग मृग बृंद अनंदित रहहीं । मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं ॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा ॥ २ ॥

पक्षी और पशुओंके समूह आनन्दित रहते हैं और भौंरे मधुर गुंजार करते हुए शोभा पा रहे हैं। जहाँ प्रत्यक्ष श्रीरामजी विराजमान हैं उस वनका वर्णन सर्पराज शेषजी भी नहीं कर सकते ॥ २ ॥

एक बार प्रभु सुख आसीना । लछिमन बचन कहे छलहीना ॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं । मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ॥ ३ ॥

एक बार प्रभु श्रीरामजी सुखसे बैठे हुए थे। उस समय लक्ष्मणजीने उनसे छलरहित (सरल) वचन कहे—हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचरके स्वामी! मैं अपने प्रभुकी तरह (अपना स्वामी समझकर) आपसे पूछता हूँ ॥ ३ ॥

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौं चरन रज सेवा ॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया ॥४॥

हे देव! मुझे समझाकर वही कहिये, जिससे सब छोड़कर मैं आपकी चरण-रजकी ही सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य और मायाका वर्णन कीजिये, और उस भक्तिको कहिये जिसके कारण आप दया करते हैं ॥ ४ ॥

दो०–ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥१४॥

हे प्रभो! ईश्वर और जीवका भेद भी सब समझाकर कहिये, जिससे आपके चरणोंमें मेरी प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जायँ ॥१४॥

चौ०—थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥१॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे तात ! मैं थोड़ेहीमें सब समझाकर कहे देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो। मैं और मेरा, तू और तेरा—यही माया है, जिसने समस्त जीवोंको वशमें कर रक्खा है ॥१॥

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥२॥

इन्द्रियोंके विषयोंको और जहाँतक मन जाता है, हे भाई ! उस सबको माया जानना। उसके भी—एक विद्या और दूसरी अविद्या, इन दोनों भेदोंको तुम सुनो—॥२॥

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥३॥

एक (अविद्या) दुष्ट (दोषयुक्त) है और अत्यन्त दुःखरूप है, जिसके वश होकर जीव संसाररूपी कुएँमें पड़ा हुआ है। और एक (विद्या) जिसके वशमें गुण है और जो जगत्‌की रचना करती है, वह प्रभुसे ही प्रेरित होती है; उसके अपना बल कुछ भी नहीं है ॥३॥

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥४॥

ज्ञान वह है जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी [दोष] नहीं है और जो सबमें समानरूपसे ब्रह्मको देखता है। हे तात ! उसीको परम वैराग्यवान् कहना चाहिये जो सारी सिद्धियोंको और तीनों गुणोंको तिनकेके समान त्याग चुका हो ॥४॥

[जिसमें मान, दम्भ, हिंसा, क्षमाराहित्य, टेढ़ापन, आचार्यसेवाका अभाव, अपवित्रता, अस्थिरता, मनका निगृहीत न होना, इन्द्रियोंके विषयमें आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत्‌में सुखबुद्धि, स्त्री-पुत्र-घर आदिमें आसक्ति तथा ममता, इष्ट और अनिष्टकी प्राप्ति

हर्ष-शोक, भक्तिका अभाव, एकान्तमें मन न लगना, विषयी मनुष्योंके संगमें प्रेम—ये अठारह न हों और नित्य अध्यात्म (आत्मा) में स्थिति तथा तत्त्वज्ञानके अर्थ (तत्त्वज्ञानके द्वारा जाननेयोग्य) परमात्माका नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कहलाता है । देखिये गीता अ० १३ । ७ से ११]

दो०–माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव ।
बंध मोच्छप्रद सर्वपर माया प्रेरक सीव ॥ १५ ॥

जो मायाको, ईश्वरको और अपने स्वरूपको नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिये । जो [कर्मानुसार] बन्धन और मोक्ष देनेवाला, सबसे परे और मायाका प्रेरक है वह ईश्वर है ॥ १५ ॥

चौ०–धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ॥१॥

धर्म [के आचरण] से वैराग्य और योगसे ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्ष-का देनेवाला है—ऐसा वेदोंने वर्णन किया है । और हे भाई ! जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तोंको सुख देनेवाली है ॥ १ ॥

सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥
भगति तात अनुपम सुखमूला । मिलइ जो संत होइँ अनुकूला ॥२॥

वह भक्ति स्वतन्त्र है, उसको [ज्ञान-विज्ञान आदि किसी] दूसरे साधनका सहारा (अपेक्षा) नहीं है । ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन हैं । हे तात ! भक्ति अनुपम एवं सुखकी मूल है, और वह तभी मिलती है जब संत अनुकूल (प्रसन्न) होते हैं ॥ २ ॥

भगति कि साधन कहउँ बखानी । सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥३॥

अब मैं भक्तिके साधन विस्तारसे कहता हूँ—यह सुगम मार्ग है, जिससे जीव मुझको सहज ही पा जाते हैं । पहले तो ब्राह्मणोंके चरणोंमें अत्यन्त प्रीति हो और वेदकी रीतिके अनुसार अपने-अपने [वर्णाश्रमके] कर्मोंमें लगा रहे ॥ ३ ॥

एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा।
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥

इसका फल, फिर विषयोंसे वैराग्य होगा। तब (वैराग्य होनेपर) धर्म (भागवतधर्म) में प्रेम उत्पन्न होगा। तब श्रवण आदि नौ प्रकार भक्तियाँ दृढ़ होंगी और मनमें मेरी लीलाओंके प्रति अत्यन्त प्रेम होगा॥

संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा।
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥

जिसका संतोंके चरणकमलोंमें अत्यन्त प्रेम हो; मन, वचन और कर्मसे भजनका दृढ़ नियम हो और जो मुझको ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता, सब कुछ जाने और सेवामें दृढ़ हो; ॥ ५ ॥

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥

मेरा गुण गाते समय जिसका शरीर पुलकित हो जाय, वाणी गद्गद हो जाय और नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बहने लगे और काम, मद और दम्भ आदि जिसमें न हों, हे भाई! मैं सदा उसके वशमें रहता हूँ॥ ६॥

दो०–बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥ १६॥

जिनको कर्म, वचन और मनसे मेरी ही गति है; और जो निष्काम भावसे मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय-कमलमें मैं सदा विश्राम किया करता हूँ॥ १६॥

चौ०–भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा।
एहि बिधि गए कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती॥

इस भक्तियोगको सुनकर लक्ष्मणजीने अत्यन्त सुख पाया और उन्होंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सिर नवाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये॥ १॥

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।
पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥

शूर्पणखा नामक रावणकी एक बहिन थी, जो नागिनके समान भयानक और दुष्ट हृदयकी थी। वह एक बार पञ्चवटीमें गयी और दोनों राजकुमारोंको देखकर विकल (कामसे पीड़ित) हो गयी ॥ २ ॥

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी।३।

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! [शूर्पणखा-जैसी राक्षसी धर्मज्ञानशून्य कामान्ध] स्त्री मनोहर पुरुषको देखकर, चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, विकल हो जाती है और मनको नहीं रोक सकती। जैसे सूर्यकान्तिमणि सूर्यको देखकर द्रवित हो जाती है (ज्वालासे पिघल जाती है)॥ ३॥

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ॥४॥

वह सुन्दर रूप धरकर प्रभुके पास जाकर और बहुत मुसकराकर वचन बोली—न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री ! विधाताने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचारकर रचा है ॥ ४ ॥

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं ॥
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ॥५॥

मेरे योग्य पुरुष (वर) जगत्‌भरमें नहीं है, मैंने तीनों लोकोंको खोज देखा। इसीसे मैं अबतक कुमारी (अविवाहित) रही। अब तुमको देखकर कुछ मन माना (चित्त ठहरा) है ॥ ५ ॥

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ॥६॥

सीताजीकी ओर देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है। तब वह लक्ष्मणजीके पास गयी। लक्ष्मणजी उसे शत्रुकी बहिन समझकर और प्रभुकी ओर देखकर कोमल वाणीसे बोले—॥ ६ ॥

सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा ॥७॥

हे सुन्दरी ! सुन, मैं तो उनका दास हूँ । मैं पराधीन हूँ, अतः तु सुभीता (सुख) न होगा । प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुरके राजा हैं, वे जो कु करें, उन्हें सब फबता है ॥ ७ ॥

सेवक सुख चह मान भिखारी । ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ॥

सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी (जिसे जुए, श आदिका व्यसन हो) धन और व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी य चाहे और अभिमानी चारों फल अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चाहे, तो सब प्राणी आकाशको दुहकर दूध लेना चाहते हैं (अर्थात् असम बातको सम्भव करना चाहते हैं) ॥ ८ ॥

पुनि फिरि राम निकट सो आई । प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तृन तोरि लाज परिहरई ॥

वह लौटकर फिर श्रीरामजीके पास आयी । प्रभुने उसे फिर लक्ष्मणजी पास भेज दिया । लक्ष्मणजीने कहा—तुम्हें वही वरेगा जो लज्जाको तृण तो कर (अर्थात् प्रतिज्ञा करके) त्याग देगा । (अर्थात् जो निपट निर्लज्ज होगा)॥

तब खिसिआनि राम पहिं गई । रूप भयंकर प्रगटत भई ॥
सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सयन बुझाई ॥१

तब वह खिसियायी हुई (क्रुद्ध होकर) श्रीरामजीके पास गयी औ उसने अपना भयङ्कर रूप प्रकट किया । सीताजीको भयभीत देख श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणजीको इशारा देकर कहा ॥ १० ॥

दो०—लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि ।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि ॥ १७

लक्ष्मणजीने बड़ी फुर्तीसे उसको बिना नाक-कानकी कर दिया । मा उसके हाथ रावणको चुनौती दी हो ! ॥ १७ ॥

चौ०—नाक कान बिनु भइ बिकरारा । जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता । धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता ॥

बिना नाक-कानके वह विकराल हो गयी। [उसके शरीरसे रक्त इस प्रकार बहने लगा] मानो [काले] पर्वतसे गेरूकी धारा बह रही हो। वह विलाप करती हुई खर-दूषणके पास गयी [और बोली—] हे भाई! तुम्हारे पौरुष (वीरता) को धिक्कार है, तुम्हारे बलको धिक्कार है॥ १॥

तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥
धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥२॥

उन्होंने पूछा, तब शूर्पणखाने सब समझा कर कहा। सब सुनकर राक्षसोंने सेना तैयार की। राक्षससमूह झुंड-के-झुंड दौड़े मानो पंखधारी काजलके पर्वतोंका झुंड हो॥ २॥

नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा॥
सूपनखा आगें करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥३॥

वे अनेकों प्रकारकी सवारियोंपर चढ़े हुए तथा अनेकों आकार (सूरतों) के हैं। वे अपार हैं और अनेकों प्रकारके असंख्य भयानक हथियार धारण किये हुए हैं। उन्होंने नाक-कान कटी हुई अमङ्गलरूपिणी शूर्पणखाको आगे कर लिया॥ ३॥

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटकु भट अति हरषाहीं॥४॥

अनगिनत भयङ्कर अशकुन हो रहे हैं। परन्तु मृत्युके वश होनेके कारण वे सब-के-सब उनको कुछ गिनते ही नहीं। गरजते हैं, ललकारते हैं और आकाशमें उड़ते हैं। सेना देखकर योद्धा लोग बहुत ही हर्षित होते हैं॥ ४॥

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई॥
धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा॥५॥

कोई कहता है दोनों भाइयोंको जीता ही पकड़ लो, पकड़कर मार डालो और स्त्रीको छीन लो। आकाशमण्डल धूलसे भर गया। तब श्रीरामजीने लक्ष्मणजीको बुलाकर उनसे कहा—॥ ५॥

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी॥६॥

राक्षसोंकी भयानक सेना आ गयी है। जानकीजीको लेकर तुम प
की कन्दरामें चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके व
सुनकर लक्ष्मणजी हाथमें धनुष-बाण लिये श्रीसीताजीसहित चले॥ ६॥

देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥

शत्रुओंकी सेना [समीप] चली आयी है, यह देखकर श्रीराम हँसकर कठिन धनुषको चढ़ाया॥ ७॥

छं०—कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै॥

कठिन धनुष चढ़ाकर सिरपर जटाका जूड़ा बाँधते हुए प्रभु शोभित हो रहे हैं, जैसे मरकतमणि (पन्ने) के पर्वतपर करोड़ों बिजलि दो साँप लड़ रहे हों। कमरमें तरकस कसकर, विशाल भुजाओंमें ध लेकर और बाण सुधारकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंकी ओर देख रहे मानो मतवाले हाथियोंके समूहको [आता] देखकर सिंह [उनकी ओ ताक रहा हो।

सो०—आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज॥ १८

'पकड़ो-पकड़ो' पुकारते हुए राक्षस योद्धा बाग छोड़कर (बड़ी तेज़ी दौड़े हुए आये [और उन्होंने श्रीरामजीको चारों ओरसे घेर लिया] बालसूर्य (उदयकालीन सूर्य) को अकेला देखकर मन्देह नामक दैत्य लेते हैं॥ १८॥

चौ०—प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन॥

[सौन्दर्य-माधुर्यनिधि] प्रभु श्रीरामजीको देखकर राक्षसोंकी थकित रह गयी! वे उनपर बाण नहीं छोड़ सके। मन्त्रीको बुलाकर दूषणने कहा—यह राजकुमार कोई मनुष्योंका भूषण है॥ १॥

नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हम केते ॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई । देखी नहिं असि सुंदरताई ॥२॥

जितने भी नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमेंसे हमने न जाने कितने ही देखे, जीते और मार डाले हैं। पर हे सब भाइयो ! सुनो, हमने जन्मभरमें ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं देखी ॥ २ ॥

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा । बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥
देहु तुरत निज नारि दुराई । जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ॥३॥

यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको कुरूप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष वध करने योग्य नहीं हैं। 'छिपायी हुई अपनी स्त्री हमें तुरंत दे दो और दोनों भाई जीते-जी घर लौट जाओ' ॥ ३ ॥

मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु । तासु बचन सुनि आतुर आवहु ॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई । सुनत राम बोले मुसुकाई ॥४॥

मेरा यह कथन तुम लोग उसे सुनाओ और उसका वचन (उत्तर) सुनकर शीघ्र आओ। दूतोंने जाकर यह सन्देश श्रीरामचन्द्रजीसे कहा। उसे सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी मुसकराकर बोले— ॥ ४ ॥

हम छत्री मृगया बन करहीं । तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं । एक बार कालहु सन लरहीं ॥५॥

हम क्षत्रिय हैं, वनमें शिकार करते हैं और तुम्हारे-सरीखे दुष्ट पशुओंको तो ढूँढ़ते ही फिरते हैं। हम बलवान् शत्रुको देखकर नहीं डरते। [लड़नेको आवे तो] एक बार तो हम कालसे भी लड़ सकते हैं ॥ ५ ॥

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक । मुनि पालक खल सालक बालक ॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू । समर बिमुख मैं हतउँ न काहू ॥६॥

यद्यपि हम मनुष्य हैं, परन्तु दैत्यकुलका नाश करनेवाले और मुनियोंकी रक्षा करनेवाले हैं। हम बालक हैं, परन्तु हैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाले ! यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। संग्राममें पीठ दिखानेवाले किसीको मैं नहीं मारता ॥ ६ ॥

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ॥

रणमें चढ़ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रुपर कृपा क (दया दिखाना) तो बड़ी भारी कायरता है। दूतोंने लौटकर तुरंत सब कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषणका हृदय अत्यन्त जल उठा ॥ ७ ॥

छं०—उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

[खर-दूषणका] हृदय जल उठा। तब उन्होंने कहा—पकड़ लो(कर लो)। [यह सुनकर] भयानक राक्षस योद्धा बाण, धनुष, तो शक्ति (साँग), शूल (बरछी), कृपाण (कटार), परिघ और फ धारण किये हुए दौड़ पड़े। प्रभु श्रीरामजीने पहले धनुषका बड़ा क घोर और भयानक टङ्कार किया, जिसे सुनकर राक्षस बहरे और व्य हो गये। उस समय उन्हें कुछ भी होश न रहा।

दो०—सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहुभाँति ॥१९(

फिर वे शत्रुको बलवान् जानकर सावधान होकर दौड़े और श्री चन्द्रजीके ऊपर बहुत प्रकारके अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे ॥ १९ (क)॥

तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर ॥१९(

श्रीरघुवीरजीने उनके हथियारोंको तिलके समान (टुकड़े-टु करके काट डाला। फिर धनुषको कानतक तानकर अपने तीर ॥ १९ (ख) ॥

छं०—तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥

तब भयानक बाण ऐसे चले मानो फुफकारते हुए बहुत-से सर्प जा रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजी संग्राममें क्रुद्ध हुए और अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चले ॥ १ ॥

अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर ॥
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ ॥ २ ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंको देखकर राक्षस वीर पीठ दिखाकर भाग चले। तब खर, दूषण और त्रिशिरा तीनों भाई क्रुद्ध होकर बोले—जो रणसे भागकर जायगा, ॥ २ ॥

तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि ॥
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार ॥ ३ ॥

उसका हम अपने हाथों वध करेंगे। तब मनमें मरना ठानकर भागते हुए राक्षस लौट पड़े और सामने होकर वे अनेकों प्रकारके हथियारोंसे श्रीरामजीपर प्रहार करने लगे ॥ ३ ॥

रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि ॥
छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच ॥ ४ ॥

शत्रुको अत्यन्त कुपित जानकर प्रभुने धनुषपर बाण चढ़ाकर बहुत-से बाण छोड़े, जिनसे भयानक राक्षस कटने लगे ॥ ४ ॥

उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन ॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान ॥ ५ ॥

उनकी छाती, सिर, भुजा, हाथ और पैर जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर गिरने लगे। बाण लगते ही वे हाथीकी तरह चिग्घाड़ते हैं। उनके पहाड़के समान धड़ कट-कटकर गिर रहे हैं ॥ ५ ॥

भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाषंड ॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड ॥ ६ ॥

योद्धाओंके शरीर कटकर सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। वे फिर माया करके उठ खड़े होते हैं। आकाशमें बहुत-सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं तथा बिना सिरके धड़ दौड़ रहे हैं ॥ ६ ॥

खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल॥७॥

चील [या क्रौंच], कौए आदि पक्षी और सियार कठोर और भयङ्कर कट-कट शब्द कर रहे हैं ॥ ७ ॥

छं०—कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयकर गिरा॥१॥

सियार कटकटाते हैं; भूत, प्रेत और पिशाच खोपड़ियाँ बटोर रहे हैं [अथवा खप्पर भर रहे हैं]। वीर-वैताल खोपड़ियोंपर ताल दे रहे हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। श्रीरघुवीरके प्रचण्ड बाण योद्धाओंके वक्षःस्थल, भुजा और सिरोंके टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। उनके धड़ जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं, फिर उठते और लड़ते हैं, और 'पकड़ो पकड़ो' का भयङ्कर शब्द करते हैं ॥ १ ॥

अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं॥
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे॥२॥

अँतड़ियोंके एक छोरको पकड़कर गीध उड़ते हैं और उन्हींका दूसरा छोर हाथसे पकड़कर पिशाच दौड़ते हैं। ऐसा मालूम होता है मानो संग्रामरूपी नगरके निवासी बहुत-से बालक पतंग उड़ा रहे हों। अनेकों योद्धा मारे और पछाड़े गये, बहुत-से, जिनके हृदय विदीर्ण हो गये हैं, पड़े कराह रहे हैं। अपनी सेनाको व्याकुल देखकर त्रिशिरा और खर-दूषण आदि योद्धा श्रीरामजीकी ओर मुड़े ॥ २ ॥

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्रीरघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका॥३॥

अनगिनत राक्षस क्रोध करके बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, शूल और कृपाण एक ही बारमें श्रीरघुवीरपर छोड़ने लगे। प्रभुने पलभरमें शत्रुओंके बाणोंको काटकर, ललकारकर उनपर अपने बाण छोड़े। सब राक्षस-सेनापतियोंके हृदयमें दस-दस बाण मारे ॥ ३ ॥

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी ॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्‌यो ॥ ४ ॥

योद्धा पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, फिर उठकर भिड़ते हैं। मरते नहीं, बहुत प्रकारकी अतिशय माया रचते हैं। देवता यह देखकर डरते हैं कि प्रेत (राक्षस) चौदह हजार हैं और अयोध्यानाथ श्रीरामजी अकेले हैं। देवता और मुनियोंको भयभीत देखकर मायाके स्वामी प्रभुने एक बड़ा कौतुक किया, जिससे शत्रुओंकी सेना एक दूसरेको रामरूप देखने लगी और आपसमें ही युद्ध करके लड़ मरी ॥ ४ ॥

दो०—राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान ॥२०(क)॥

सब ['यही राम है, इसे मारो' इस प्रकार] राम-राम कहकर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पद पाते हैं। कृपानिधान श्रीरामजीने यह उपाय करके क्षणभरमें शत्रुओंको मार डाला ॥ २० (क) ॥

हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥२०(ख)॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं, आकाशमें नगाड़े बज रहे हैं। फिर वे सब स्तुति कर-करके अनेकों विमानोंपर सुशोभित हुए चले गये ॥ २० (ख) ॥

चौ०—जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते ॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए ॥१॥

जब श्रीरघुनाथजीने युद्धमें शत्रुओंको जीत लिया तथा देवता, मनुष्य और मुनि सबके भय नष्ट हो गये, तब लक्ष्मणजी सीताजीको ले आये। चरणों पड़ते हुए उनको प्रभुने प्रसन्नतापूर्वक उठाकर हृदयसे लगा लिया ॥ १ ॥

सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता।
पंचबटीं बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥

सीताजी श्रीरामजीके श्याम और कोमल शरीरको परम प्रेमके साथ देख रही हैं। नेत्र अघाते नहीं हैं। इस प्रकार पञ्चवटीमें बसकर श्रीरघुनाथजी देवताओं और मुनियोंको सुख देनेवाले चरित्र करने लगे ॥२॥

धुआँ देखि खर दूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा॥
बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥

खर-दूषणका विध्वंस देखकर शूर्पणखाने जाकर रावणको भड़काया। वह बड़ा क्रोध करके वचन बोली—तूने देश और खजानेकी सुधि ही भुला दी ॥ ३ ॥

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पें बिनु सतकर्मा॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥

शराब पी लेता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिरपर खड़ा है। नीतिके बिना राज्य और धर्मके बिना धन प्राप्त करनेसे, भगवान्‌को समर्पण किये बिना उत्तम कर्म करनेसे और विवेक उत्पन्न किये बिना विद्या पढ़नेसे परिणाममें श्रम ही हाथ लगता है। विषयोंके संगसे संन्यासी, बुरी सलाहसे राजा, मानसे ज्ञान, मदिरापानसे लज्जा, ॥४-५॥

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

नम्रताके बिना (नम्रता न होनेसे) प्रीति और मद (अहंकार) से गुणवान् शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है ॥ ६ ॥

सो०—रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन ॥२१(क)॥

शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्पको छोटा करके नहीं समझना चाहिये। ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकारसे विलाप करके रोने लगी ॥ २१ (क) ॥

दो०—सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ ॥२१(ख)॥

रावणकी सभाके बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकारसे रो-रोकर कह रही है कि अरे दशग्रीव! तेरे जीते-जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिये! ॥ २१ (ख) ॥

चौ०—सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइँ तव नासा कान निपाता ॥१॥

शूर्पणखाके वचन सुनते ही सभासद् अकुला उठे। उन्होंने शूर्पणखाकी बाँह पकड़कर उसे उठाया और समझाया। लङ्कापति रावणने कहा—अपनी बात तो बता, किसने तेरे नाक-कान काट लिये? ॥ १ ॥

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए ॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥२॥

[वह बोली—] अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र, जो पुरुषोंमें सिंहके समान हैं, वनमें शिकार खेलने आये हैं। मुझे उनकी करनी ऐसी समझ पड़ी है कि, वे पृथ्वीको राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ २ ॥

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना ॥३॥

जिनकी भुजाओंका बल पाकर हे दशमुख! मुनिलोग वनमें निर्भय होकर विचरने लगे हैं। वे देखनेमें तो बालक हैं, पर हैं कालके समान। वे परम धीर, श्रेष्ठ धनुर्धर और अनेकों गुणोंसे युक्त हैं ॥ ३ ॥

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ॥४॥

दोनों भाइयोंका बल और प्रताप अतुलनीय है। वे दुष्टोंके वध करनेमें

लगे हैं और देवता तथा मुनियोंको सुख देनेवाले हैं। वे शोभाके धाम हैं। 'राम' ऐसा उनका नाम है। उनके साथ एक तरुणी सुन्दरी स्त्री है ॥४॥

रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सतकोटि तासु बलिहारी॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा॥५॥

विधाताने उस स्त्रीको ऐसी रूपकी राशि बनाया है कि सौ करोड़ रति (कामदेवकी स्त्री) उसपर निछावर हैं। उन्हींके छोटे भाईने मेरे नाक-कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरी हँसी करने लगे ॥५॥

खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा॥
खर दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता॥६॥

मेरी पुकार सुनकर खर-दूषण सहायता करने आये। पर उन्होंने क्षणभरमें सारी सेनाको मार डाला। खर, दूषण और त्रिशिराका वध सुनकर रावणके सारे अंग जल उठे ॥ ६ ॥

दो०—सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नहिं राति॥ २२॥

उसने शूर्पणखाको समझाकर बहुत प्रकारसे अपने बलका बखान किया। किन्तु [मनमें] वह अत्यन्त चिन्तावश होकर अपने महलमें गया। उसे रातभर नींद नहीं पड़ी ॥ २२ ॥

चौ०—सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥१॥

[वह मन-ही-मन विचार करने लगा—] देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियोंमें कोई ऐसा नहीं जो मेरे सेवकको भी पा सके। खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान् थे, उन्हें भगवान्के सिवा और कौन मार सकता है ? ॥ १ ॥

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥२॥

देवताओंको आनन्द देनेवाले और पृथ्वीका भार हरण करनेवाले

भगवान्‌ने ही यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभुके बाण [के आघात] से प्राण छोड़कर भवसागरसे तर जाऊँगा ॥२॥

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥३॥

इस तामस शरीरसे भजन तो होगा नहीं; अतएव मन, वचन और कर्मसे यही दृढ़ निश्चय है। और यदि वे मनुष्यरूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनोंको रणमें जीतकर उनकी स्त्रीको हर लूँगा ॥ ३ ॥

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥४॥

[यों विचारकर] रावण रथपर चढ़कर अकेला ही वहाँ चला जहाँ समुद्रके तटपर मारीच रहता था। [शिवजी कहते हैं कि—] हे पार्वती ! यहाँ श्रीरामचन्द्रजीने जैसी युक्ति रची, वह सुन्दर कथा सुनो ॥ ४ ॥

दो०—लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद ॥ २३ ॥

लक्ष्मणजी जब कन्द-मूल-फल लेनेके लिये वनमें गये, तब [अकेलेमें] कृपा और सुखके समूह श्रीरामचन्द्रजी हँसकर जानकीजीसे बोले—॥२३॥

चौ०—सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला ॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा ॥१॥

हे प्रिये ! हे सुन्दर पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली सुशीले ! सुनो। मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य-लीला करूँगा। इसलिये जबतक मैं राक्षसों-का नाश करूँ तबतक तुम अग्निमें निवास करो ॥१॥

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता ॥२॥

श्रीरामजीने ज्यों ही सब समझाकर कहा, त्यों ही श्रीसीताजी प्रभुके चरणोंको हृदयमें धरकर अग्निमें समा गयीं। सीताजीने अपनी ही छाया-मूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके-जैसे ही शील-स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी॥ २ ॥

लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥[३]

भगवान्‌ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्यको लक्ष्मणजीने भी न जाना। स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था, और उसको सिर नवाया॥ ३॥

नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥[४]

नीचका झुकना (नम्रता) भी अत्यन्त दुःखदायी होता है। जैसे अंकुश, धनुष, साँप और बिल्लीका झुकना। हे भवानी! दुष्टकी मीठी वाणी भी [उसी प्रकार] भय देनेवाली होती है, जैसे बिना ऋतुके फूल!॥[४]

दो०—करि पूजा मारीच तव सादर पूछी वात।
कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु तात॥ २४॥

तब मारीचने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी—हे तात! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अकेले आये हैं!॥[२४]॥

चौ०—दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥[१]

भाग्यहीन रावणने सारी कथा अभिमानसहित उसके सामने कही [और फिर कहा—] तुम छल करनेवाले कपटमृग बनो, जिस उपायसे मैं उस राजवधूको हर लाऊँ॥ १॥

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥
तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै॥[२]

तब उसने (मारीचने) कहा—हे दशशीश! सुनिये। वे मनुष्यरूपमें चराचरके ईश्वर हैं। हे तात! उनसे वैर न कीजिये। उन्हींके मारनेसे मरना और उनके जिलानेसे जीना होता है!(सबका जीवन-मरण उन्हींके अधीन है)॥[२]॥

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं॥[३]

यही राजकुमार मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये गये थे। उस समय श्रीरघुनाथजीने बिना फलका बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षणभरमें सौ योजनपर आ गिरा। उनसे वैर करनेमें भलाई नहीं है ॥ ३ ॥

भइ मम कीट भृंग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई ॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ॥४॥

मेरी दशा तो भृंगीके कीड़ेकी-सी हो गयी है। अब मैं जहाँ-तहाँ श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंको ही देखता हूँ। और हे तात! यदि वे मनुष्य हैं, तो भी बड़े शूरवीर हैं; उनसे विरोध करनेमें पूरा न पड़ेगा (सफलता नहीं मिलेगी) ॥ ४ ॥

दो०—जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड ॥ २५ ॥

जिसने ताड़का और सुबाहुको मारकर शिवजीका धनुष तोड़ दिया और खर, दूषण और त्रिशिराका वध कर डाला, ऐसा प्रचण्ड बली भी कहीं मनुष्य हो सकता है? ॥ २५ ॥

चौ०—जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी ॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा ॥१॥

अतः अपने कुलकी कुशल विचारकर आप लौट जाइये। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत-सी गालियाँ दीं (दुर्वचन कहे)। [कहा—] अरे मूर्ख! तू गुरुकी तरह मुझे ज्ञान सिखाता है? बता तो, संसारमें मेरे समान योद्धा कौन है? ॥ १ ॥

तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना ॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी ॥२॥

तब मारीचने हृदयमें अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जाननेवाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान्, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया—इन नौ व्यक्तियोंसे विरोध (वैर) करनेमें कल्याण (कुशल) नहीं होता ॥ २ ॥

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना।
उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरौं रघुपति सर लागें॥

जब मारीचने दोनों प्रकारसे अपना मरण देखा, तब उ
श्रीरघुनाथजीकी शरण तकी (अर्थात् उनकी शरण जानेमें ही कल्
समझा)। [सोचा कि] उत्तर देते ही (नाहीं करते ही) यह अभागा मुझे
डालेगा, फिर श्रीरघुनाथजीके बाण लगनेसे ही क्यों न मरूँ? ॥ ३ ॥

अस जियँ जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा।
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥

हृदयमें ऐसा समझकर वह रावणके साथ चला। श्रीरामजीके चर
उसका अखण्ड प्रेम है। उसके मनमें इस बातका अत्यन्त हर्ष है कि
मैं अपने परम स्नेही श्रीरामजीको देखूँगा; किन्तु उसने यह हर्ष राव
नहीं जनाया ॥ ४ ॥

छं०—निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥

[वह मन-ही-मन सोचने लगा—] अपने परम प्रियतमको देख
नेत्रोंको सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीजीसहित और छोटे भाई लक्ष्मण
समेत कृपानिधान श्रीरामजीके चरणोंमें मन लगाऊँगा। जिनका क्रो
भी मोक्ष देनेवाला है, और जिनकी भक्ति उन अवश (किसीके वशमें
होनेवाले, स्वतन्त्र भगवान्) को भी वशमें करनेवाली है, अहा! वे
आनन्दके समुद्र श्रीहरि अपने हाथोंसे बाण सन्धान कर मेरा वध करेंगे!

दो०—मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन ॥२६॥

धनुष-बाण धारण किये मेरे पीछे-पीछे पृथ्वीपर (पकड़नेके लिये) दौ
हुए प्रभुको मैं फिर-फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है ॥२६

चौ०—तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयऊ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई॥१॥

जब रावण उस वनके (जिस वनमें श्रीरघुनाथजी रहते थे) निकट पहुँचा, तब मारीच कपटमृग बन गया ! वह अत्यन्त ही विचित्र था, कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सोनेका शरीर मणियोंसे जड़कर बनाया था॥ १॥

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥२॥

सीताजीने उस परम सुन्दर हिरनको देखा, जिसके अंग-अंगकी छटा अत्यन्त मनोहर थी। [वे कहने लगीं—] हे देव ! हे कृपालु रघुवीर ! सुनिये। इस मृगकी छाल बहुत सुन्दर है॥ २॥

सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥३॥

जानकीजीने कहा—हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो ! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिये। तब श्रीरघुनाथजी, [मारीचके कपटमृग बननेका] सब कारण जानते हुए भी, देवताओंका कार्य बनानेके लिये हर्षित होकर उठे॥ ३॥

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥४॥

हिरनको देखकर श्रीरामजीने कमरमें फेंटा बाँधा और हाथमें धनुष लेकर उसपर सुन्दर (दिव्य) बाण चढ़ाया। फिर प्रभुने लक्ष्मणजीको समझाकर कहा—हे भाई ! वनमें बहुत-से राक्षस फिरते हैं॥ ४॥

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥५॥

तुम बुद्धि और विवेकके द्वारा बल और समयका विचार करके सीताकी रखवाली करना। प्रभुको देखकर मृग भाग चला। श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े॥ ५॥

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई॥

वेद जिनके विषयमें 'नेति-नेति' कहकर रह जाते हैं और शिवजी जिन्हें ध्यानमें नहीं पाते (अर्थात् जो मन और वाणीसे नितान्त परे हैं), वे ही श्रीरामजी मायासे बने हुए मृगके पीछे दौड़ रहे हैं। वह निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है॥ ६॥

प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥

इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरे छल करता हुआ वह प्रभुको दूर ले गया। तब श्रीरामचन्द्रजीने तककर (निशाना साधकर) कठोर बाण मारा, [जिसके लगते ही] वह घोर शब्द करके पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ७॥

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥

पहले लक्ष्मणजीका नाम लेकर उसने पीछे मनमें श्रीरामजीका स्मरण किया। प्राणत्याग करते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट किया और प्रेमसहित श्रीरामजीका स्मरण किया॥ ८॥

अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥

सुजान (सर्वज्ञ) श्रीरामजीने उसके हृदयके प्रेमको पहचानकर उसे वह गति (अपना परमपद) दी जो मुनियोंको भी दुर्लभ है॥ ९॥

दो०—बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥२७॥

देवता बहुत-से फूल बरसा रहे हैं और प्रभुके गुणोंकी गाथाएँ (स्तुतियाँ) गा रहे हैं [कि] श्रीरघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुरको भी अपना परमपद दे दिया॥ २७॥

चौ०—खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥१॥

दुष्ट मारीचको मारकर श्रीरघुवीर तुरंत लौट पड़े। हाथमें धनुष और कमरमें तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीताजीने दुःखभरी वाणी (मरते समय मारीचकी 'हा लक्ष्मण' की आवाज) सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजीसे कहने लगीं—॥ १॥

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥२॥

तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई बड़े संकटमें हैं। लक्ष्मणजीने हँसकर कहा—हे माता! सुनो, जिनके भ्रुकुटिविलास (भौंके इशारे) मात्रसे सारी सृष्टिका लय (प्रलय) हो जाता है, वे श्रीरामजी क्या कभी स्वप्नमें भी संकटमें पड़ सकते हैं?॥ २॥

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू॥३॥

इसपर जब सीताजी कुछ मर्म वचन (हृदयमें चुभनेवाले वचन) कहने लगीं, तब भगवान्‌की प्रेरणासे लक्ष्मणजीका मन भी चञ्चल हो उठा। वे श्रीसीताजीको वन और दिशाओंके देवताओंको सौंपकर वहाँ चले जहाँ रावणरूपी चन्द्रमाके लिये राहुरूप श्रीरामजी थे॥ ३॥

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं॥४॥

रावण सूना मौका देखकर यति (संन्यासी) के वेषमें श्रीसीताजीके समीप आया। जिसके डरसे देवता और दैत्यतक इतना डरते हैं कि रातको नींद नहीं आती और दिनमें [भरपेट] अन्न नहीं खाते—॥ ४॥

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥५॥

वही दस सिरवाला रावण कुत्तेकी तरह इधर-उधर ताकता हुआ

भड़िहाई* (चोरी) के लिये चला। [काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी! इस प्रकार कुमार्गपर पैर रखते ही शरीरमें तेज तथा बुद्धि एवं बलका लेश भी नहीं रह जाता ॥ ५ ॥

* सूना पाकर कुत्ता चुपकेसे बर्तन-भाँड़ोंमें मुँह डालकर कुछ चुरा ले जाता है उसे 'भड़िहाई' कहते हैं।

नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई ॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ॥६॥

रावणने अनेकों प्रकारकी सुहावनी कथाएँ रचकर सीताजीको राजनीति, भय और प्रेम दिखलाया। सीताजीने कहा—हे यति गोसाईं! सुनो, तुमने तो दुष्टकी तरह वचन कहे ॥ ६ ॥

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ॥७॥

तब रावणने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गयीं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा—अरे दुष्ट! खड़ा तो रह, प्रभु आ गये ॥ ७ ॥

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा ॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥८॥

जैसे सिंहकी स्त्रीको तुच्छ खरगोश चाहे, वैसे ही अरे राक्षसराज! तू [मेरी चाह करके] कालके वशमें हुआ है। ये वचन सुनते ही रावणको क्रोध आ गया। परन्तु मनमें उसने सीताजीके चरणोंकी वन्दना करके सुख माना ॥ ८ ॥

दो०—क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ ॥२८॥

फिर क्रोधमें भरकर रावणने सीताजीको रथपर बैठा लिया और वह बड़ी उतावलीके साथ आकाशमार्गसे चला। किन्तु डरके मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था ॥ २८ ॥

0152, 1534, 1
H6·3

चौ०—हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिनदायक॥१॥

[सीताजी विलाप कर रही थीं—] हा जगत्के अद्वितीय वीर श्रीरघुनाथजी! आपने किस अपराधसे मुझपर दया भुला दी। हे दुःखोंके हरनेवाले, हे शरणागतको सुख देनेवाले, हा रघुकुलरूपी कमलके सूर्य!॥१॥

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥२॥

हा लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया, उसका फल पाया। श्रीजानकीजी बहुत प्रकारसे विलाप कर रही हैं—[हाय!] प्रभुकी कृपा तो बहुत है, परन्तु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं॥२॥

बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥३॥

प्रभुको मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे? यज्ञके अन्नको गदहा खाना चाहता है! सीताजीका भारी विलाप सुनकर जड-चेतन सभी जीव दुखी हो गये॥३॥

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुलतिलक नारि पहिचानी॥
अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई॥४॥

गृध्रराज जटायुने सीताजीकी दुःखभरी वाणी सुनकर पहचान लिया कि ये रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी हैं। [उसने देखा कि] नीच राक्षस इनको [बुरी तरह] लिये जा रहा है, जैसे कपिला गाय म्लेच्छके पाले पड़ गयी हो॥४॥

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा॥
धावा क्रोधवंत खग कैसें। छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें॥५॥

[वह बोला—] हे सीते पुत्री! भय मत कर। मैं इस राक्षसका नाश करूँगा। [यह कहकर] वह पक्षी क्रोधमें भरकर कैसे दौड़ा, जैसे पर्वतकी ओर वज्र छूटता हो॥५॥

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥
आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना ॥६॥

[उसने ललकारकर कहा—] रे-रे दुष्ट ! खड़ा क्यों नहीं होता ? निडर होकर चल दिया ! मुझे तूने नहीं जाना ? उसको यमराजके समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मनमें अनुमान करने लगा—॥ ६ ॥

की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई ॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥७॥

यह या तो मैनाक पर्वत है, या पक्षियोंका स्वामी गरुड़ ! पर वह (गरुड़) तो अपने स्वामी विष्णुसहित मेरे बलको जानता है ! [कुछ पास आनेपर] रावणने उसे पहचान लिया [और बोला—] यह तो बूढ़ा जटायु है ! यह मेरे हाथरूपी तीर्थमें शरीर छोड़ेगा ॥ ७ ॥

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहि बहुबाहू ॥८॥

यह सुनते ही गीध क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे दौड़ा और बोला—रावण ! मेरी सिखावन सुन । जानकीजीको छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चला जा । नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले ! ऐसा होगा कि—॥ ८ ॥

राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥९॥

श्रीरामजीके क्रोधरूपी अत्यन्त भयानक अग्निमें तेरा सारा वंश पतिंगा [होकर भस्म] हो जायगा । योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता । तब गीध क्रोध करके दौड़ा ॥ ९ ॥

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥१०॥

उसने [रावणके] बाल पकड़कर उसे रथके नीचे उतार लिया । रावण पृथ्वीपर गिर पड़ा । गीध सीताजीको एक ओर बैठाकर फिर लौटा और चोंचोंसे मार-मारकर रावणके शरीरको विदीर्ण कर डाला । इससे उसे एक घड़ीके लिये मूर्च्छा हो गयी ॥ १० ॥

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी ॥ ११॥

तब खिसियाये हुए रावणने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक कटार निकाली और उससे जटायुके पंख काट डाले। पक्षी (जटायु) श्रीरामजीकी अद्भुत लीलाका स्मरण करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११॥

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥ १२॥

सीताजीको फिर रथपर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावलीके साथ चला। उसे भय कम न था! सीताजी आकाशमें विलाप करती हुई जा रही हैं। मानो व्याधेके वशमें पड़ी हुई (जालमें फँसी हुई) कोई भयभीत हिरनी हो! ॥ १२॥

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी ॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयऊ ॥ १३॥

पर्वतपर बैठे हुए बंदरोंको देखकर सीताजीने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीताजीको ले गया और उन्हें अशोकवनमें जा रक्खा ॥ १३ ॥

दो०—हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ॥ २९ (क) ॥

सीताजीको बहुत प्रकारसे भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया, तब उन्हें यत्न कराके (सब व्यवस्था ठीक कराके) अशोक-वृक्षके नीचे रख दिया ॥ २९ (क) ॥

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम ॥ २९ (ख) ॥

जिस प्रकार कपटमृगके साथ श्रीरामजी दौड़ चले थे, उसी छबिको हृदयमें रखकर वे हरिनाम (रामनाम) रटती रहती हैं ॥ २९ (ख) ॥

चौ०—रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी ॥
जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली ॥ १॥

[इधर] श्रीरघुनाथजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको आते देखकर बाह्यरूप- में बहुत चिन्ता की [और कहा—] हे भाई ! तुमने जानकीको अकेली छोड़ दिया और मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर यहाँ चले आये ! ॥ १ ॥

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं ॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥२॥

राक्षसोंके झुंड वनमें फिरते रहते हैं। मेरे मनमें ऐसा आता है कि सीता आश्रममें नहीं है। छोटे भाई लक्ष्मणजीने श्रीरामजीके चरणकमलों- को पकड़कर हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है। २।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ ॥
आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥३॥

लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामजी वहाँ गये जहाँ गोदावरीके तटपर उनका आश्रम था। आश्रमको जानकीजीसे रहित देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्यकी भाँति व्याकुल और दीन (दुखी) हो गये ॥ ३ ॥

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती ॥४॥

[वे विलाप करने लगे—] हा गुणोंकी खानि जानकी ! हा रूप, शील, व्रत और नियमोंमें पवित्र सीते ! लक्ष्मणजीने बहुत प्रकारसे समझाया, तब श्रीरामजी लताओं और वृक्षोंकी पंक्तियोंसे पूछते हुए चले—॥ ४ ॥

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥५॥

हे पक्षियो ! हे पशुओ ! हे भौंरोंकी पंक्तियो ! तुमने कहीं मृगनयनी सीताको देखा है ? खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौंरोंका समूह प्रवीण कोयल ५

कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥६॥

कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद्का चन्द्रमा और नागिनी, वरुणका पाश, कामदेवका धनुष, हंस, गज और सिंह—ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं ॥ ६ ॥

श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥७॥

बेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं। इनके मनमें जरा भी शङ्का और संकोच नहीं है। हे जानकी! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं मानो राज पा गये हों। (अर्थात् तुम्हारे अंगोंके सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित थे। आज तुम्हें न देखकर ये अपनी शोभाके अभिमानमें फूल रहे हैं) ॥ ७ ॥

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥८॥

तुमसे यह अनख (स्पर्द्धा) कैसे सही जाती है? हे प्रिये! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होती? इस प्रकार [अनन्त ब्रह्माण्डोंके अथवा महामहिमामयी स्वरूपाशक्ति श्रीसीताजीके] स्वामी श्रीरामजी सीताजीको खोजते हुए [इस प्रकार] विलाप करते हैं मानो कोई महाविरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो ॥ ८ ॥

पूरनकाम राम सुख रासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी ॥
आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥९॥

पूर्णकाम, आनन्दकी राशि, अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्योंके-से चरित्र कर रहे हैं। आगे [जानेपर] उन्होंने गृध्रपति जटायुको पड़ा देखा। वह श्रीरामजीके चरणोंका स्मरण कर रहा था, जिनमें [ध्वजा, कुलिश आदिकी] रेखाएँ (चिह्न) हैं ॥ ९ ॥

दो०—कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर ॥ ३० ॥

कृपासागर श्रीरघुवीरने अपने कर-कमलसे उसके सिरका स्पर्श किया (उसके सिरपर कर-कमल फेर दिया)। शोभाधाम श्रीरामजीका [परम सुन्दर] मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही ॥ ३० ॥

चौ०—तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा ॥
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही ॥१॥

तब धीरज धरकर गीधने यह वचन कहा—हे भव (जन्म-मृत्यु)के भयका नाश करनेवाले श्रीरामजी ! सुनिये । हे नाथ ! रावणने मेरी यह दशा की है । उसी दुष्टने जानकीजीको हर लिया है ॥ १ ॥

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं ॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपा निधाना ॥२॥

हे गोसाईं ! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशाको गया है । सीताजी कुररी (कुर्ज) की तरह अत्यन्त विलाप कर रही थीं । हे प्रभो ! मैंने आपके दर्शनोंके लिये ही प्राण रोक रक्खे थे । हे कृपानिधान ! अब ये चलना ही चाहते हैं ॥ २ ॥

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता ॥
जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥३॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे तात! शरीरको बनाये रखिये। तब उसने मुसकराते हुए मुँहसे यह बात कही—मरते समय जिनका नाम मुखमें आ जानेसे अधम (महान् पापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं—॥३॥

सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगें ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई ॥४॥

वही (आप) मेरे नेत्रोंके विषय होकर सामने खड़े हैं । हे नाथ! अब मैं किस कमी [की पूर्ति]के लिये देहको रक्खूँ ? नेत्रोंमें जल भरकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे—हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मोंसे दुर्लभ गति पायी है ॥ ४ ॥

परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥५॥

जिनके मनमें दूसरेका हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिये जगत्में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है । हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाममें जाइये । मैं आपको क्या दूँ ? आप तो पूर्णकाम हैं (सब कुछ पा चुके हैं) ॥ ५ ॥

दो०—सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥ ३१ ॥

हे तात ! सीताहरणकी बात आप जाकर पिताजीसे न कहियेगा । यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्बसहित वहाँ आकर स्वयं ही कहेगा ।३१।

चौ०—गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा ॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥१॥

जटायुने गीधकी देह त्यागकर हरिका रूप धारण किया और बहुतसे अनुपम (दिव्य) आभूषण और [दिव्य] पीताम्बर पहन लिये । श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रोंमें [प्रेम तथा आनन्दके आँसुओंका] जल भरकर वह स्तुति कर रहा है—॥ १ ॥

छं०—जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही ॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं ॥ १ ॥

हे रामजी ! आपकी जय हो ! आपका रूप अनुपम है; आप निर्गुण हैं, सगुण हैं और सत्य ही गुणोंके (मायाके) प्रेरक हैं । दस सिरवाले रावणकी प्रचण्ड भुजाओंको खण्ड-खण्ड करनेके लिये प्रचण्ड बाण धारण करनेवाले, पृथ्वीको सुशोभित करनेवाले, जलयुक्त मेघके समान श्याम शरीरवाले, कमलके समान मुख और [लाल] कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले, विशाल भुजाओंवाले और भव-भयसे छुड़ानेवाले कृपालु श्रीरामजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

बलमप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरं।
गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं ॥
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं ॥ २ ॥

आप अपरिमित बलवाले हैं; अनादि, अजन्मा, अव्यक्त (निराकार), एक, अगोचर (अलक्ष्य), गोविन्द (वेदवाक्योंद्वारा जाननेयोग्य), इन्द्रियोंसे अतीत, [जन्म-मरण, सुख-दुःख, हर्ष-शोकादि] द्वन्द्वोंको हरनेवाले, विज्ञानकी घन मूर्ति और पृथ्वीके आधार हैं तथा जो संत राम-मन्त्रको

जपते हैं, उन अनन्त सेवकोंके मनको आनन्द देनेवाले हैं। उन निष्काम-प्रिय (निष्काम जनोंके प्रेमी अथवा उन्हें प्रिय) तथा काम आदि दुष्टों (दुष्ट वृत्तियों) के दलका दलन करनेवाले श्रीरामजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं॥
सो प्रगट करुनाकंद सोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई॥ ३॥

जिनको श्रुतियाँ निरञ्जन (मायासे परे), ब्रह्म, व्यापक, निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती हैं। मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकन्द, शोभाके समूह [स्वयं श्रीभगवान्] प्रकट होकर जड-चेतन समस्त जगत्को मोहित कर रहे हैं। मेरे हृदय-कमलके भ्रमररूप उनके अङ्ग-अङ्गमें बहुत-से कामदेवोंकी छबि शोभा पा रही है ॥ ३ ॥

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा॥
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥ ४॥

जो अगम और सुगम हैं, निर्मल स्वभाव हैं, विषम और सम हैं और सदा शीतल (शान्त) हैं। मन और इन्द्रियोंको सदा वशमें करते हुए योगी बहुत साधन करनेपर जिन्हें देख पाते हैं। वे तीनों लोकोंके स्वामी, रमानिवास श्रीरामजी निरन्तर अपने दासोंके वशमें रहते हैं। वे ही मेरे हृदयमें निवास करें, जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमनको मिटानेवाली है ॥ ४ ॥

दो०—अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥ ३२॥

अखण्ड भक्तिका वर माँगकर गृध्रराज जटायु श्रीहरिके परमधामको

चला गया। श्रीरामचन्द्रजीने उसकी [दाहकर्म आदि सारी] क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथोंसे कीं॥ ३२॥

चौ०—कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥१॥

श्रीरघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्तवाले, दीनदयालु और बिना ही कारण कृपालु हैं। गीध [पक्षियोंमें भी] अधम पक्षी और मांसाहारी था, उसको भी वह दुर्लभ गति दी जिसे योगीजन माँगते रहते हैं॥ १॥

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई॥२॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! सुनो, वे लोग अभागे हैं जो भगवान्‌को छोड़कर विषयोंसे अनुराग करते हैं। फिर दोनों भाई सीताजीको खोजते हुए आगे चले। वे वनकी सघनता देखते जाते हैं॥ २॥

संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन॥
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता॥३॥

वह सघन वन लताओं और वृक्षोंसे भरा है; उसमें बहुत-से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्रीरामजीने रास्तेमें आते हुए कबंध राक्षसको मार डाला। उसने अपने शापकी सारी बात कही॥ ३॥

दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा॥
सुनु गंधर्ब कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही॥४॥

[वह बोला—] दुर्वासाजीने मुझे शाप दिया था। अब प्रभुके चरणोंको देखनेसे वह पाप मिट गया। [श्रीरामजीने कहा—] हे गन्धर्व! सुनो, मैं तुम्हें कहता हूँ, ब्राह्मणकुलसे द्रोह करनेवाला, मुझे नहीं सुहाता॥४॥

दो०—मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥३३॥

मन, वचन और कर्मसे कपट छोड़कर जो भूदेव ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, मुझसमेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वशमें हो जाते हैं।३३।

चौ०—सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥१॥

शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है, ऐसा संत कहते हैं। शील और गुणसे हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है। और गुणगणोंसे युक्त और ज्ञानमें निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है॥ १॥

कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई॥२॥

श्रीरामजीने अपना धर्म (भागवतधर्म) कहकर उसे समझाया। अपने चरणोंमें प्रेम देखकर वह उनके मनको भाया। तदनन्तर श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंमें सिर नवाकर वह अपनी गति (गन्धर्वका स्वरूप) पाकर आकाशमें चला गया॥ २॥

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा॥
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥३॥

उदार श्रीरामजी उसे गति देकर शबरीजीके आश्रममें पधारे। शबरीजीने श्रीरामचन्द्रजीको घरमें आये देखा। तब मुनि मतङ्गजीके वचनोंको याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया॥ ३॥

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥४॥

कमलसदृश नेत्र और विशाल भुजावाले, सिरपर जटाओंका मुकुट और हृदयपर वनमाला धारण किये हुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयोंके चरणोंमें शबरीजी लिपट पड़ीं॥ ४॥

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥५॥

वे प्रेममें मग्न हो गयीं, मुखसे वचन नहीं निकलता। बार-बार चरण-कमलोंमें सिर नवा रही हैं। फिर उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयोंके चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनोंपर बैठाया॥ ५॥

दो०—कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ॥३४॥

उन्होंने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्रीरामजीको दिये। प्रभुने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेमसहित खाया ॥३४॥

चौ०—पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी ॥१॥

फिर वे हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गयीं। प्रभुको देखकर उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। [उन्होंने कहा—] मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? मैं नीच जातिकी और अत्यन्त मूढ़बुद्धि हूँ ॥ १ ॥

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता ॥२॥

जो अधमसे भी अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यन्त अधम हैं; और उनमें भी हे पापनाशन! मैं मन्दबुद्धि हूँ। श्रीरघुनाथजीने कहा—हे भामिनि! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्तिहीका सम्बन्ध मानता हूँ ॥ २ ॥

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥३॥

जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता, इन सबके होनेपर भी भक्तिसे रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल [शोभाहीन] दिखायी पड़ता है ॥ ३ ॥

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥४॥

मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मनमें धारण कर। पहली भक्ति है संतोंका सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथाप्रसंगमें प्रेम ॥ ४ ॥

दो०—गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ॥३५॥

तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरुके चरण-कमलोंकी सेवा। और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहोंका गान करे ॥ ३५ ॥

चौ०–मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥१॥

मेरे (राम) मन्त्रका जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास—यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदोंमें प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियोंका निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्योंसे वैराग्य और निरन्तर संत-पुरुषोंके धर्म (आचरण) में लगे रहना ॥ १ ॥

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥२॥

सातवीं भक्ति है जगत्‌भरको समभावसे मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतोंको मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तोष करना और स्वप्नमें भी पराये दोषोंको न देखना॥२॥

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ॥३॥

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदयमें मेरा भरोसा रखना, और किसी भी अवस्थामें हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवोंमेंसे जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष जड-चेतन, कोई भी हो—॥ ३ ॥

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ॥
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई ॥४॥

हे भामिनि ! मुझे वही अत्यन्त प्रिय है। फिर तुझमें तो सभी प्रकारकी भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियोंको भी दुर्लभ है, वही आज तेरे लिये सुलभ हो गयी है ॥ ४ ॥

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा ॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबरगामिनी ॥५॥

मेरे दर्शनका परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि! अब यदि तू गजगामिनी जानकीकी कुछ खबर जानती हो, तो बता ॥ ५ ॥

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मतिधीरा॥६॥

[शबरीने कहा—] हे रघुनाथजी! आप पंपा नामक सरोवरको जाइये। वहाँ आपकी सुग्रीवसे मित्रता होगी। हे देव! हे रघुवीर! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं! ॥६॥

बार बार प्रभुपद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥७॥

बार-बार प्रभुके चरणोंमें सिर नवाकर, प्रेमसहित उसने सब कथा सुनायी ॥ ७ ॥

छं०—कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥

सब कथा कहकर भगवान्‌के मुखके दर्शन कर, हृदयमें उनके चरण-कमलोंको धारण कर लिया और योगाग्निसे देहको त्याग कर (जलाकर) वह उस दुर्लभ हरिपदमें लीन हो गयी, जहाँसे लौटना नहीं होता। तुलसी-दासजी कहते हैं कि अनेकों प्रकारके कर्म, अधर्म और बहुत-से मत, ये सब शोकप्रद हैं; हे मनुष्यो! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम करो।

दो०—जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥३६॥

जो नीच जातिकी और पापोंकी जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्रीको भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन! तू ऐसे प्रभुको भूलकर सुख चाहता है? ॥ ३६ ॥

चौ०—चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥
विरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा॥१॥

श्रीरामचन्द्रजीने उस वनको भी छोड़ दिया और वे आगे चले। दोनों भाई अतुलनीय बलवान् और मनुष्योंमें सिंहके समान हैं। प्रभु विरहीकी तरह विषाद करते हुए अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं—॥१॥

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा॥२॥

हे लक्ष्मण! जरा वनकी शोभा तो देखो; इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध नहीं होगा? पक्षी और पशुओंके समूह सभी स्त्रीसहित हैं। मानो वे मेरी निन्दा कर रहे हैं॥ २॥

हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥३॥

हमें देखकर [जब डरके मारे] हिरनोंके झुंड भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं—तुमको भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरनोंसे पैदा हुए हो, अतः तुम आनन्द करो। ये तो सोनेका हिरन खोजने आये हैं॥ ३॥

संग लाइ करिनी करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥४॥

हाथी हथिनियोंको साथ लगा लेते हैं। वे मानो मुझे शिक्षा देते हैं [कि स्त्रीको कभी अकेली नहीं छोड़ना चाहिये]। भलीभाँति चिन्तन किये हुए शास्त्रको भी बार-बार देखते रहना चाहिये। अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजाको वशमें नहीं समझना चाहिये॥ ४॥

राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥५॥

और स्त्रीको चाहे हृदयमें ही क्यों न रक्खा जाय; परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसीके वशमें नहीं रहते। हे तात! इस सुन्दर वसन्तको तो देखो; प्रियाके बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है॥ ५॥

दो०—बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल ॥३७(क)॥

मुझे विरहसे व्याकुल, बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर कामदेवने वन, भौंरों और पक्षियोंको साथ लेकर मुझपर धावा बोल दिया ॥ ३७ (क) ॥

देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात ॥३७(ख)॥

परन्तु जब उसका दूत यह देख गया कि मैं भाईके साथ हूँ (अकेला नहीं हूँ), तब उसकी बात सुनकर कामदेवने मानो सेनाको रोककर डेरा डाल दिया है ॥ ३७ (ख) ॥

चौ०—बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका ॥१॥

विशाल वृक्षोंमें लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो नाना प्रकारके तंबू तान दिये गये हैं। केला और ताड़ सुन्दर ध्वजा-पताकाके समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता जिसका मन धीर है ॥१॥

बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए ॥२॥

अनेकों वृक्ष नाना प्रकारसे फूले हुए हैं। मानो अलग-अलग बाना (वर्दी) धारण किये हुए बहुत-से तीरंदाज़ हों। कहीं-कहीं सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे हैं। मानो योद्धा लोग अलग-अलग होकर छावनी डाले हों॥

कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी ॥३॥

कोयलें कूज रही हैं, वही मानो मतवाले हाथी [चिग्घाड़ रहे] हैं। ढेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुन्दर ताजी (अरबी) घोड़े हैं॥ ३ ॥

तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभीं झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥४॥

तीतर और बटेर पैदल सिपाहियोंके झुंड हैं। कामदेवकी सेनाका वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतोंकी शिलाएँ रथ और जलके झरने नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं, जो गुणसमूह (विरदावली) का वर्णन करते हैं॥४॥

मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठीं आई॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें॥५॥

भौंरोंकी गुंजार भेरी और शहनाई है। शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा मानो दूतका काम लेकर आयी है। इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये कामदेव मानो सबको चुनौती देता हुआ विचर रहा है॥५॥

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥
एहि कें एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी॥६॥

हे लक्ष्मण! कामदेवकी इस सेनाको देखकर जो धीर बने रहते हैं, जगत्में उन्हींकी [वीरोंमें] प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेवके एक स्त्रीका बड़ा भारी बल है। उससे जो बच जाय, वही श्रेष्ठ योद्धा है॥६॥

दो०-तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥३८(क)॥

हे तात! काम, क्रोध और लोभ ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञानके धाम मुनियोंके भी मनोंको पलभरमें क्षुब्ध कर देते हैं॥३८(क)॥

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि॥३८(ख)॥

लोभको इच्छा और दम्भका बल है, कामको केवल स्त्रीका बल है और क्रोधको कठोर वचनोंका बल है; श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा कहते हैं॥३८(ख)॥

चौ०—गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई॥१॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजी गुणातीत (तीनों गुणोंसे परे), चराचर जगत्‌के स्वामी और सबके अन्तरकी जाननेवाले हैं। [उपर्युक्त बातें कहकर] उन्होंने कामी लोगोंकी दीनता (बेबसी) दिखलायी है और धीर (विवेकी) पुरुषोंके मनमें वैराग्यको दृढ़ किया है ॥ १ ॥

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम कीं दाया॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला॥२॥

क्रोध, क़ाम, लोभ, मद और माया—ये सभी श्रीरामजीकी दयासे छूट जाते हैं। वह नट (नटराज भगवान्) जिसपर प्रसन्न होता है, वह मनुष्य इन्द्रजाल (माया) में नहीं भूलता ॥ २ ॥

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥३॥

हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ—हरिका भजन ही सत्य है, यह सारा जगत् तो स्वप्न [की भाँति झूठा] है। फिर प्रभु श्रीरामजी पंपा नामक सुन्दर और गहरे सरोवरके तीरपर गये ॥ ३ ॥

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥४॥

उसका जल संतोंके हृदय-जैसा निर्मल है। मनको हरनेवाले सुन्दर चार घाट बँधे हुए हैं। भाँति-भाँतिके पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषोंके घर याचकोंकी भीड़ लगी हो ! ॥ ४ ॥

दो०—पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म॥३९(क)॥

घनी पुरइनों (कमलके पत्तों) की आड़में जलका जल्दी पता

नहीं मिलता। जैसे मायासे ढके रहनेके कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दीखता ॥ ३९ (क) ॥

सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ॥३९(ख)॥

उस सरोवरके अत्यन्त अथाह जलमें सब मछलियाँ सदा एकरस (एक समान) सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषोंके सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं ॥ ३९ (ख) ॥

चौ०—बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥१॥

उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत-से भौंरे मधुर स्वरसे गुंजार कर रहे हैं। जलके मुर्गे और राजहंस बोल रहे हैं। मानो प्रभुको देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों ॥ १ ॥

चक्रबाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई ॥
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥२॥

चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियोंका समुदाय देखते ही बनता है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर पक्षियोंकी बोली बड़ी सुहावनी लगती है, मानो [रास्तेमें] जाते हुए पथिकको बुलाये लेती हो ॥२॥

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहु दिसि कानन बिटप सुहाए ॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला ॥३॥

उस झील (पंपासरोवर) के समीप मुनियोंने आश्रम बना रक्खे हैं। उसके चारों ओर वनके सुन्दर वृक्ष हैं। चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि— ॥ ३ ॥

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ ॥४॥

बहुत प्रकारके वृक्ष नये-नये पत्तों और [सुगन्धित] पुष्पोंसे युक्त हैं, [जिनपर] भौंरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं। स्वभावसे ही शीतल, मन्द

सुगन्धित एवं मनको हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है ॥ ४ ॥

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥५॥

कोयलें, 'कुहू', 'कुहू'का शब्द कर रही हैं। उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियोंका भी ध्यान टूट जाता है ॥ ५ ॥

दो०—फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ ॥ ४० ॥

फलोंके बोझसे झुककर सारे वृक्ष पृथ्वीके पास आ लगे हैं। जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर [विनयसे] झुक जाते हैं ॥ ४० ॥

चौ०—देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ॥
देखी सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया ॥१॥

श्रीरामजीने अत्यन्त सुन्दर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया। एक सुन्दर उत्तम वृक्षकी छाया देखकर श्रीरघुनाथजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित बैठ गये ॥ १ ॥

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए ॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला ॥२॥

फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने-अपने धामको चले गये। कृपालु श्रीरामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजीसे रसीली कथाएँ कह रहे हैं ॥ २ ॥

बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी ॥
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा ॥३॥

भगवान्‌को विरहयुक्त देखकर नारदजीके मनमें विशेषरूपसे सोच हुआ। [उन्होंने विचार किया कि] मेरे ही शापको स्वीकार करके श्रीरामजी नाना प्रकारके दुःखोंका भार सह रहे हैं (दुःख उठा रहे हैं) ॥ ३ ॥

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई ॥
यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥४॥

ऐसे (भक्तवत्सल) प्रभुको जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन

आवेगा। यह विचारकर नारदजी हाथमें वीणा लिये हुए वहाँ गये जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे ॥ ४ ॥

गावत रामचरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी ॥
करत दंडवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उर लाई ॥५॥

वे कोमल वाणीसे प्रेमके साथ बहुत प्रकारसे बखान-बखानकर रामचरितका गान कर[ते हुए चले आ]रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्रीरामचन्द्रजीने नारदजीको उठा लिया और बहुत देरतक हृदयसे लगाये रक्खा ५

स्वागत पूँछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे ॥६॥

फिर स्वागत (कुशल) पूछकर पास बैठा लिया। लक्ष्मणजीने आदरके साथ उनके चरण धोये ॥ ६ ॥

दो०—नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि ॥ ४१ ॥

बहुत प्रकारसे विनती करके और प्रभुको मनमें प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमलके समान हाथोंको जोड़कर वचन बोले—॥ ४१ ॥

चौ०—सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक ॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी ॥१॥

हे स्वभावसे ही उदार श्रीरघुनाथजी ! सुनिये। आप सुन्दर अगम और सुगम वरके देनेवाले हैं। हे स्वामी ! मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिये, यद्यपि आप अन्तर्यामी होनेके नाते सब जानते ही हैं ॥ १ ॥

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिबर न सकहु तुम्ह मागी ॥२॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो ! क्या मैं अपने भक्तोंसे कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन-सी वस्तु प्रिय लगती है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम नहीं माँग सकते ? ॥ २ ॥

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें ॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई ॥३॥

मुझे भक्तके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो। तब नारदजी हर्षित होकर बोले—मैं ऐसा वर माँगता हूँ, यह धृष्टता करता हूँ— ॥ ३ ॥

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥४॥

यद्यपि प्रभुके अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक-से-एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ! रामनाम सब नामोंसे बढ़कर हो और पापरूपी पक्षियोंके समूहके लिये यह बधिकके समान हो ॥ ४ ॥

दो०—राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम ॥ ४२(क) ॥

आपकी भक्ति पूर्णिमाकी रात्रि है; उसमें 'राम' नाम यही पूर्ण चन्द्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तोंके हृदयरूपी निर्मल आकाशमें निवास करें ॥ ४२ ॥

एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउ माथ ॥ ४२ (ख)॥

कृपासागर श्रीरघुनाथजीने मुनिसे 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा। तब नारदजीने मनमें अत्यन्त हर्षित होकर प्रभुके चरणोंमें मस्तक नवाया ॥ ४२ (ख) ॥

चौ०—अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥१॥

श्रीरघुनाथजीको अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले—हे रामजी! हे रघुनाथजी! सुनिये, जब आपने अपनी मायाको प्रेरित करके मुझे मोहित किया था, ॥ १ ॥

तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥२॥

तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु! आपने मुझे किस

कारण विवाह नहीं करने दिया ? [प्रभु बोले—] हे मुनि ! सुनो, मैं तुम्हें हर्षके साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं ॥ २ ॥

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई ॥३॥

मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ जैसे माता बालककी रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब दौड़कर आग और साँपको पकड़ने जाता है, तो वहाँ माता उसे [अपने हाथों] अलग करके बचा लेती है ॥ ३ ॥

प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी ॥४॥

सयाना हो जानेपर उस पुत्रपर माता प्रेम तो करती है, परन्तु पिछली बात नहीं रहती। (अर्थात् मातृपरायण शिशुकी तरह फिर उसको बचानेकी चिन्ता नहीं करती, क्योंकि वह मातापर निर्भर न कर अपनी रक्षा आप करने लगता है।) ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने) पुत्रके समान है और [तुम्हारे-जैसा] अपने बलका मान न करनेवाला सेवक मेरे शिशु पुत्रके समान है ॥ ४ ॥

जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥५॥

मेरे सेवकको केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानीको) अपना बल होता है। पर काम-क्रोधरूपी शत्रु तो दोनोंके लिये हैं। [भक्तके शत्रुओंको मारनेकी जिम्मेवारी मुझपर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है; परन्तु अपने बलको माननेवाले ज्ञानीके शत्रुओंका नाश करनेकी जिम्मेवारी मुझपर नहीं है।] ऐसा विचारकर पण्डितजन (बुद्धिमान् लोग) मुझको ही भजते हैं। वे ज्ञान प्राप्त होनेपर भी भक्तिको नहीं छोड़ते ॥ ५ ॥

दो०—काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥ ४३॥

काम, क्रोध, लोभ और मद आदि मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है। इनमें मायारूपिणी (मायाकी साक्षात् मूर्ति) स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है॥ ४३॥

चौ०—सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी॥१॥

हे मुनि! सुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोहरूपी वन [को विकसित करने] के लिये स्त्री वसन्तऋतुके समान है। जप, तप, नियमरूपी सम्पूर्ण जलके स्थानोंको स्त्री ग्रीष्मरूप होकर सर्वथा सोख लेती है॥ १॥

काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई॥२॥

काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) आदि मेढ़क हैं। इनको वर्षाऋतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एकमात्र यही (स्त्री) है। बुरी वासनाएँ कुमुदोंके समूह हैं। उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरद्ऋतु है॥ २॥

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई॥३॥

समस्त धर्म कमलोंके झुंड हैं। यह नीच (विषयजन्य) सुख देनेवाली स्त्री हिमऋतु होकर उन्हें जला डालती है। फिर ममतारूपी जवासका समूह (वन) स्त्रीरूपी शिशिरऋतुको पाकर हरा-भरा हो जाता है॥ ३॥

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधिआरी॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥४॥

पापरूपी उल्लुओंके समूहके लिये यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अन्धकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य—ये सब मछलियाँ हैं। और उन [को फँसाकर नष्ट करने] के लिये स्त्री बंसीके समान है, चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं॥ ४॥

दो०–अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि ॥ ४४ ॥

युवती स्त्री अवगुणोंकी मूल, पीड़ा देनेवाली और सब दुःखोंकी खान है। इसलिये हे मुनि! मैंने जीमें ऐसा जानकर तुमको विवाह करनेसे रोका था ॥ ४४ ॥

चौ०–सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए ॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीके सुन्दर वचन सुनकर मुनिका शरीर पुलकित हो गया और नेत्र [प्रेमाश्रुओंके जलसे] भर आये। [वे मन-ही-मन कहने लगे—] कहो तो किस प्रभुकी ऐसी रीति है, जिसका सेवकपर इतना ममत्व और प्रेम हो ॥ १ ॥

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी ॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद ॥ २ ॥

जो मनुष्य भ्रमको त्यागकर ऐसे प्रभुको नहीं भजते, वे ज्ञानके कंगाल, दुर्बुद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदरसहित बोले—हे विज्ञानविशारद श्रीरामजी! सुनिये— ॥ २ ॥

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा ॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ ॥ ३ ॥

हे रघुवीर! हे भव-भय (जन्म-मरणके भय) का नाश करनेवाले मेरे नाथ! अब कृपा कर संतोंके लक्षण कहिये। [श्रीरामजीने कहा—] हे मुनि! सुनो, मैं संतोंके गुणोंको कहता हूँ जिनके कारण मैं उनके वशमें रहता हूँ ॥ ३ ॥

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी ॥ ४ ॥

वे संत [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन] छः विकारों (दोषों) को जीते हुए, पापरहित, कामनारहित, निश्चल (स्थिरबुद्धि), अकिञ्चन (सर्वत्यागी), बाहर-भीतरसे पवित्र, सुखके धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान्, योगी, ॥ ४ ॥

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्मगति परम प्रबीना ॥ ५ ॥

सावधान, दूसरोंको मान देनेवाले, अभिमानरहित, धैर्यवान्, धर्मके ज्ञान और आचरणमें अत्यन्त निपुण, ॥ ५ ॥

दो०—गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ ४५ ॥

गुणोंके घर, संसारके दुःखोंसे रहित और सन्देहोंसे सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरणकमलोंको छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही ॥ ४५ ॥

चौ०—निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥ १ ॥

कानोंसे अपने गुण सुननेमें सकुचाते हैं, दूसरोंके गुण सुननेसे विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं, न्यायका कभी त्याग नहीं करते। सरलस्वभाव होते हैं और सभीसे प्रेम रखते हैं ॥ १ ॥

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥ २ ॥

वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियममें रत रहते हैं। और गुरु, गोविन्द तथा ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता (प्रसन्नता) और मेरे चरणोंमें निष्कपट प्रेम होता है ॥ २ ॥

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥ ३ ॥

तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्माके तत्त्वका ज्ञान) और वेद-पुराणका यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्गपर पैर नहीं रखते ॥ ३ ॥

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित पर हित रत सीला ॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ॥ ४ ॥

सदा मेरी लीलाओंको गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरोंके हितमें लगे रहनेवाले होते हैं। हे मुनि! सुनो, संतोंके जितने गुण हैं उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते ॥ ४ ॥

छं०—कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्म पुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए॥

'शेष और शारदा भी नहीं कह सकते' यह सुनते ही नारदजीने श्रीरामजीके चरणकमल पकड़ लिये। दीनबन्धु कृपालु प्रभुने इस प्रकार अपने श्रीमुखसे अपने भक्तोंके गुण कहे। भगवान्‌के चरणोंमें बार-बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो सब आशा छोड़कर केवल श्रीहरिके रंगमें रँग गये हैं।

दो०—रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥४६(क)॥

जो लोग रावणके शत्रु श्रीरामजीका पवित्र यश गावेंगे और सुनेंगे, वे वैराग्य, जप और योगके बिना ही श्रीरामजीकी दृढ़ भक्ति पावेंगे॥४६ (क)॥

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥४६(ख)॥

युवती स्त्रियोंका शरीर दीपककी लौके समान है; हे मन! तू उसका पतिंगा न बन। काम और मदको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर और सदा सत्संग कर॥ ४६ (ख)॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
तृतीयः सोपानः समाप्तः।

कलियुगके सम्पूर्ण पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानसका
यह तीसरा सोपान समाप्त हुआ॥

(अरण्यकाण्ड समाप्त)

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

पञ्चम सोपान

सुन्दरकाण्ड

श्लोक

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम् ॥ १ ॥

शान्त, सनातन, अप्रमेय (प्रमाणोंसे परे), निष्पाप, मोक्षरूप परम शान्ति देनेवाले, ब्रह्मा, शम्भु और शेषजीसे निरन्तर सेवित, वेदान्तके द्वारा जाननेयोग्य, सर्वव्यापक, देवताओंमें सबसे बड़े, मायासे मनुष्यरूपमें दीखनेवाले, समस्त पापोंको हरनेवाले, करुणाकी खान, रघुकुलमें श्रेष्ठ तथा राजाओंके शिरोमणि, राम कहलानेवाले जगदीश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥ २ ॥

हे रघुनाथजी ! मैं सत्य कहता हूँ, और फिर आप सबके अन्तरात्मा ही हैं (सब जानते ही हैं), कि मेरे हृदयमें दूसरी कोई इच्छा नहीं है। हे रघुकुलश्रेष्ठ ! मुझे अपनी निर्भरा (पूर्ण) भक्ति दीजिये और मेरे मनको काम आदि दोषोंसे रहित कीजिये ॥ २ ॥

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥ ३ ॥

अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन [को ध्वंस करने] के लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी, श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

चौ०—जामवंत के बचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई । सहि दुख कंद मूल फल खाई ॥१॥

जाम्बवान्‌के सुन्दर वचन सुनकर हनुमान्‌जीके हृदयको बहुत ही भाये । [वे बोले—] हे भाई ! तुमलोग दुःख सहकर, कन्द-मूल-फल खाकर तबतक मेरी राह देखना ॥ १ ॥

जब लगि आवौं सीतहि देखी । होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी ॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा ॥२॥

जबतक मैं सीताजीको देखकर [लौट] न आऊँ । काम अवश्य होगा, क्योंकि मुझे बहुत ही हर्ष हो रहा है । यह कहकर और सबको मस्तक नवाकर तथा हृदयमें श्रीरघुनाथजीको धारण करके हनुमान्‌जी हर्षित होकर चले ॥ २ ॥

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर । कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर ॥
बार बार रघुबीर सँभारी । तरकेउ पवन तनय बल भारी ॥३॥

समुद्रके तीरपर एक सुन्दर पर्वत था । हनुमान्‌जी खेलसे ही (अनायास ही) कूदकर उसके ऊपर जा चढ़े और बार-बार श्रीरघुवीरका स्मरण करके अत्यन्त बलवान् हनुमान्‌जी उसपरसे बड़े वेगसे उछले ॥ ३ ॥

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥४॥

जिस पर्वतपर हनुमान्‌जी पैर रखकर चले (जिसपरसे वे उछले) वह तुरंत ही पातालमें धँस गया। जैसे श्रीरघुनाथजीका अमोघ बाण चलता है, उसी तरह हनुमान्‌जी चले॥ ४॥

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥५॥

समुद्रने उन्हें श्रीरघुनाथजीका दूत समझकर मैनाक पर्वतसे कहा कि हे मैनाक! तू इनकी थकावट दूर करनेवाला हो (अर्थात् अपने ऊपर इन्हें विश्राम दे)॥ ५॥

दो०—हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥ १॥

हनुमान्‌जीने उसे हाथसे छू दिया, फिर प्रणाम करके कहा—भाई! श्रीरामचन्द्रजीका काम किये बिना मुझे विश्राम कहाँ?॥ १॥

चौ०—जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥१॥

देवताओंने पवनपुत्र हनुमान्‌जीको जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल-बुद्धिको जाननेके लिये (परीक्षार्थ) उन्होंने सुरसा नामक सर्पोंकी माताको भेजा, उसने आकर हनुमान्‌जीसे यह बात कही—॥ १॥

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥२॥

आज देवताओंने मुझे भोजन दिया है। यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जीने कहा—श्रीरामजीका कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीताजीकी खबर प्रभुको सुना दूँ,॥ २॥

तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥३॥

तब मैं आकर तुम्हारे मुँहमें घुस जाऊँगा [तुम मुझे खा लेना]।

हे माता ! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दे । जब किसी भी उपायसे उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान्‌जीने कहा—तो फिर मुझे खा न ले ॥ ३ ॥

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ॥ ४ ॥

उसने योजनभर (चार कोसमें) मुँह फैलाया । तब हनुमान्‌जीने अपने शरीरको उससे दूना बढ़ा लिया । उसने सोलह योजनका मुख किया । हनुमान्‌जी तुरंत ही बत्तीस योजनके हो गये ॥ ४ ॥

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा । तासु दून कपि रूप देखावा ॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥ ५ ॥

जैसे-जैसे सुरसा मुखका विस्तार बढ़ाती थी, हनुमान्‌जी उसका दूना रूप दिखलाते थे । उसने सौ योजन (चार सौ कोस) का मुख किया । तब हनुमान्‌जीने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया ॥ ५ ॥

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा । मागा बिदा ताहि सिरु नावा ॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा ॥ ६ ॥

और वे उसके मुखमें घुसकर [तुरंत] फिर बाहर निकल आये और उसे सिर नवाकर विदा माँगने लगे । [उसने कहा—] मैंने तुम्हारे बुद्धि-बलका भेद पा लिया, जिसके लिये देवताओंने मुझे भेजा था ॥ ६ ॥

दो०—राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान ।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ॥ २ ॥

तुम श्रीरामचन्द्रजीका सब कार्य करोगे, क्योंकि तुम बल-बुद्धिके भण्डार हो । यह आशीर्वाद देकर वह चली गयी, तब हनुमान्‌जी हर्षित होकर चले ॥ २ ॥

चौ०—निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई ॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं । जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं ॥ १ ॥

समुद्रमें एक राक्षसी रहती थी । वह माया करके आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंको पकड़ लेती थी । आकाशमें जो जीव-जन्तु उड़ा करते थे, वह जलमें उनकी परछाईं देखकर, ॥ १ ॥

गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥२॥

उस परछाईंको पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे [और जलमें गिर पड़ते थे]। इस प्रकार वह सदा आकाशमें उड़नेवाले जीवोंको खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान्‌जीसे भी किया। हनुमान्‌जीने तुरंत ही उसका कपट पहचान लिया॥ २॥

ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥३॥

पवनपुत्र धीरबुद्धि वीर श्रीहनुमान्‌जी उसको मारकर समुद्रके पार गये। वहाँ जाकर उन्होंने वनकी शोभा देखी। मधु (पुष्परस) के लोभसे भौंरे गुंजार कर रहे थे॥ ३॥

नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
सैल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥४॥

अनेकों प्रकारके वृक्ष फल-फूलसे शोभित हैं। पक्षी और पशुओंके समूहको देखकर तो वे मनमें [बहुत ही] प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान्‌जी भय त्यागकर उसपर दौड़कर जा चढ़े॥४॥

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥५॥

[शिवजी कहते हैं-] हे उमा! इसमें वानर हनुमान्‌की कुछ बड़ाई नहीं है। यह प्रभुका प्रताप है, जो कालको भी खा जाता है। पर्वतपर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। बहुत ही बड़ा किला है, कुछ कहा नहीं जाता॥ ५॥

अति उतंग जलनिधि चहु पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥६॥

वह अत्यन्त ऊँचा है, उसके चारों ओर समुद्र है। सोनेके परकोटे (चहारदिवारी) का परम प्रकाश हो रहा है॥ ६॥

छं०—कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥

गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै ॥ १ ॥

विचित्र मणियोंसे जड़ा हुआ सोनेका परकोटा है, उसके अंदर बहुत-से सुन्दर-सुन्दर घर हैं। चौराहे, बाजार, सुन्दर मार्ग और गलियाँ हैं; सुन्दर नगर बहुत प्रकारसे सजा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरोंके समूह तथा पैदल और रथोंके समूहोंको कौन गिन सकता है! अनेक रूपोंके राक्षसोंके दल हैं, उनकी अत्यन्त बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती ॥ १ ॥

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं ॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं ॥ २ ॥

वन, बाग, उपवन (बगीचे), फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग, देवताओं और गन्धर्वोंकी कन्याएँ अपने सौन्दर्यसे मुनियोंके भी मनोंको मोहे लेती हैं। कहीं पर्वतके समान विशाल शरीरवाले बड़े ही बलवान् मल्ल (पहलवान) गरज रहे हैं। वे अनेकों अखाड़ोंमें बहुत प्रकारसे भिड़ते और एक दूसरेको ललकारते हैं॥ २॥

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं ॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही ॥ ३ ॥

भयङ्कर शरीरवाले करोड़ों योद्धा यत्न करके (बड़ी सावधानीसे) नगरकी चारों दिशाओंमें (सब ओरसे) रखवाली करते हैं। कहीं दुष्ट राक्षस भैंसों, मनुष्यों, गायों, गदहों और बकरोंको खा रहे हैं। तुलसीदासने इनकी कथा इसीलिये कुछ थोड़ी-सी कही है कि ये निश्चय ही श्रीरामचन्द्रजीके बाणरूपी तीर्थमें शरीरोंको त्यागकर परमगति पावेंगे ॥ ३ ॥

दो०—पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ॥ ३ ॥

नगरके बहुसंख्यक रखवालोंको देखकर हनुमान्जीने मनमें विचार किया कि अत्यन्त छोटा रूप धरूँ और रातके समय नगरमें प्रवेश करूँ ॥ ३ ॥

चौ०—मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥ १ ॥

हनुमान्जी मच्छड़के समान (छोटा-सा) रूप धारण कर नररूपसे लीला करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके लंकाको चले। [लंकाके द्वारपर] लंकिनी नामकी एक राक्षसी रहती थी। वह बोली— मेरा निरादर करके (बिना मुझसे पूछे) कहाँ चला जा रहा है ? ॥ १ ॥

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी ॥ २ ॥

रे मूर्ख ! तूने मेरा भेद नहीं जाना ? जहाँतक (जितने) चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमान्जीने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह खूनकी उलटी करती हुई पृथ्वीपर लुढ़क पड़ी ॥ २ ॥

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका ॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥ ३ ॥

वह लंकिनी फिर अपनेको सँभालकर उठी और डरके मारे हाथ जोड़कर विनती करने लगी। [वह बोली—] रावणको जब ब्रह्माजीने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसोंके विनाशकी यह पहचान बता दी थी कि—॥ ३ ॥

बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे ॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता ॥ ४ ॥

जब तू बंदरके मारनेसे व्याकुल हो जाय, तब तू राक्षसोंका संहार हुआ जान लेना। हे तात ! मेरे बड़े पुण्य हैं जो मैं श्रीरामचन्द्रजीके दूत (आप) को नेत्रोंसे देख पायी ॥ ४ ॥

दो०—तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥ ४ ॥

हे तात ! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेमें रक्खा जाय, तो भी वे सब मिलकर [दूसरे पलड़ेपर रक्खे हुए] उस सुखके बराबर नहीं हो सकते जो लव (क्षण) मात्रके सत्संगसे होता है ॥४॥

चौ०—प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥१॥

अयोध्यापुरीके राजा श्रीरघुनाथजीको हृदयमें रक्खे हुए नगरमें प्रवेश करके सब काम कीजिये। उसके लिये विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गायके खुरके बराबर हो जाता है, अग्निमें शीतलता आ जाती है, ॥ १ ॥

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥२॥

और हे गरुड़जी ! सुमेरु पर्वत उसके लिये रजके समान हो जाता है, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने एक बार कृपा करके देख लिया। तब हनुमान्जीने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान्का स्मरण करके नगरमें प्रवेश किया ॥ २ ॥

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥३॥

उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महलकी खोज की। जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे। फिर वे रावणके महलमें गये। वह अत्यन्त विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥४॥

हनुमान्जीने उस (रावण) को शयन किये देखा। परन्तु महलमें जानकीजी नहीं दिखायी दीं। फिर एक सुन्दर महल दिखायी दिया। वहाँ (उसमें) भगवान्का एक अलग मन्दिर बना हुआ था ॥ ४ ॥

दो०—रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ ॥ ५ ॥

वह महल श्रीरामजीके आयुध (धनुष-बाण) के चिह्नोंसे अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसीके वृक्षसमूहोंको देखकर कपिराज श्रीहनुमान्‌जी हर्षित हुए ॥ ५ ॥

चौ०—लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा ॥१॥

लंका तो राक्षसोंके समूहका निवासस्थान है। यहाँ सज्जन (साधु-पुरुष) का निवास कहाँ! हनुमान्‌जी मनमें इस प्रकार तर्क करने लगे। उसी समय विभीषणजी जागे ॥ १ ॥

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी ॥२॥

उन्होंने (विभीषणने) रामनामका स्मरण (उच्चारण) किया। हनुमान्‌जीने उन्हें सज्जन जाना और हृदयमें हर्षित हुए। [हनुमान्‌जीने विचार किया कि] इनसे हठ करके (अपनी ओरसे ही) परिचय करूँगा, क्योंकि साधुसे कार्यकी हानि नहीं होती [प्रत्युत लाभ ही होता है] ॥२॥

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए ॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥३॥

ब्राह्मणका रूप धरकर हनुमान्‌जीने उन्हें वचन सुनाये (पुकारा)। सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आये। प्रणाम करके कुशल पूछी [और कहा कि] हे ब्राह्मणदेव! अपनी कथा समझाकर कहिये ॥ ३ ॥

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी ॥४॥

क्या आप हरिभक्तोंमेंसे कोई हैं? क्योंकि आपको देखकर मेरे हृदयमें अत्यन्त प्रेम उमड़ रहा है। अथवा क्या आप दीनोंसे प्रेम करनेवाले स्वयं श्रीरामजी ही हैं, जो मुझे बड़भागी बनाने (घर-बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने) आये हैं? ॥ ४ ॥

दो०-तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम ॥ ६ ॥

तब हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीकी सारी कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनोंके शरीर पुलकित हो गये और श्रीरामजीके गुणसमूहोंका स्मरण करके दोनोंके मन [प्रेम और आनन्दमें] मग्न हो गये ॥ ६ ॥

चौ०-सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी ॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥१॥

[विभीषणजीने कहा—] हे पवनपुत्र ! मेरी रहनी सुनो। मैं यहाँ वैसे ही रहता हूँ जैसे दाँतोंके बीचमें बेचारी जीभ ! हे तात ! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुलके नाथ श्रीरामचन्द्रजी क्या कभी मुझपर कृपा करेंगे ? ॥१॥

तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता ॥२॥

मेरा तामसी (राक्षस) शरीर होनेसे साधन तो कुछ बनता नहीं और न मनमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें प्रेम ही है। परन्तु हे हनुमान्! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्रीरामजीकी मुझपर कृपा है, क्योंकि हरिकी कृपाके बिना संत नहीं मिलते ॥ २ ॥

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥३॥

जब श्रीरघुवीरने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हठ करके (अपनी ओरसे) दर्शन दिये हैं। [हनुमान्‌जीने कहा—] हे विभीषणजी ! सुनिये, प्रभुकी यही रीति है कि वे सेवकपर सदा ही प्रेम किया करते हैं ॥ ३ ॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ॥४॥

भला कहिये, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ ! [जातिका] चञ्चल वानर हूँ और सब प्रकारसे नीच हूँ। प्रातःकाल जो हमलोगों (बंदरों) का नाम ले ले तो उस दिन उसे भोजन न मिले ॥ ४ ॥

दो०-अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ॥ ७ ॥

हे सखा ! सुनिये, मैं ऐसा अधम हूँ; पर श्रीरामचन्द्रजीने तो मुझपर भी कृपा ही की है। भगवान्‌के गुणोंका स्मरण करके हनुमान्‌जीके दोनों नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया ॥ ७ ॥

चौ०-जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी ॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा ॥१॥

जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (श्रीरघुनाथजी) को भुलाकर [विषयोंके पीछे] भटकते फिरते हैं, वे दुखी क्यों न हों ? इस प्रकार श्रीरामजीके गुणसमूहोंको कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शान्ति प्राप्त की ॥ १ ॥

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही ॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता ॥२॥

फिर विभीषणजीने, श्रीजानकीजी जिस प्रकार वहाँ (लङ्कामें) रहती थीं, वह सब कथा कही। तब हनुमान्‌जीने कहा—हे भाई ! सुनो, मैं जानकी माताको देखना चाहता हूँ ॥ २ ॥

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ ॥३॥

विभीषणजीने [माताके दर्शनकी] सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनायीं। तब हनुमान्‌जी विदा लेकर चले। फिर वही (पहलेका मसक-सरीखा) रूप धरकर वहाँ गये जहाँ अशोकवनमें (वनके जिस भागमें) सीताजी रहती थीं ॥ ३ ॥

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा ॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी ॥४॥

सीताजीको देखकर हनुमान्‌जीने उन्हें मनहीमें प्रणाम किया। उन्हें बैठे-ही-बैठे रात्रिके चारों पहर बीत जाते हैं। शरीर दुबला हो गया

है, सिरपर जटाओंकी एक वेणी (लट) है । हृदयमें श्रीरघुनाथजीके गुणसमूहोंका जाप (स्मरण) करती रहती हैं ॥ ४ ॥

दो०–निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ॥ ८ ॥

श्रीजानकीजी नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये हुए हैं (नीचेकी ओर देख रही हैं) और मन श्रीरामजीके चरणकमलोंमें लीन है । जानकीजीको दीन (दुखी) देखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी बहुत ही दुखी हुए ॥ ८ ॥

चौ०–तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई । करइ बिचार करौं का भाई ॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा । संग नारि बहु किएँ बनावा ॥१॥

हनुमान्‌जी वृक्षके पत्तोंमें छिप रहे और विचार करने लगे कि हे भाई! क्या करूँ (इनका दुःख कैसे दूर करूँ) ? उसी समय बहुत-सी स्त्रियोंको साथ लिये सज-धजकर रावण वहाँ आया ॥ १ ॥

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा । साम दान भय भेद देखावा ॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी । मंदोदरी आदि सब रानी ॥२॥

उस दुष्टने सीताजीको बहुत प्रकारसे समझाया । साम, दान, भय और भेद दिखलाया । रावणने कहा—हे सुमुखि ! हे सयानी ! सुनो ! मन्दोदरी आदि सब रानियोंको—॥ २ ॥

तव अनुचरीं करउँ पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥३॥

मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है । तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही ! अपने परम स्नेही कोसलाधीश श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके जानकीजी तिनकेकी आड़ (परदा) करके कहने लगीं—॥ ३ ॥

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ॥
अस मन समुझु कहति जानकी । खल सुधि नहिं रघुबीर बान की ॥४॥

हे दशमुख ! सुन, जुगनूके प्रकाशसे कभी कमलिनी खिल सकती है ? जानकीजी फिर कहती हैं—तू [अपने लिये भी] ऐसा ही मनमें समझ ले । रे दुष्ट ! तुझे श्रीरघुवीरके बाणकी खबर नहीं है ॥ ४ ॥

सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ॥५॥

रे पापी ! तू मुझे सूनेमें हर लाया है। रे अधम ! निर्लज्ज ! तुझे लज्जा नहीं आती ? ॥ ५ ॥

दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन ॥ ९ ॥

अपनेको जुगनूके समान और रामचन्द्रजीको सूर्यके समान सुनकर और सीताजीके कठोर वचनोंको सुनकर रावण तलवार निकालकर बड़े गुस्सेमें आकर बोला—॥ ९ ॥

चौ०—सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना ॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी ॥१॥

सीता ! तूने मेरा अपमान किया है। मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाणसे काट डालूँगा। नहीं तो [अब भी] जल्दी मेरी बात मान ले। हे सुमुखि ! नहीं तो जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा ! ॥ १ ॥

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा ॥२॥

[सीताजीने कहा—] हे दशग्रीव ! प्रभुकी भुजा जो श्याम कमलकी मालाके समान सुन्दर और हाथीके सूँडके समान [पुष्ट तथा विशाल] है, या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठमें पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है ॥ २ ॥

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं ॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा ॥३॥

सीताजी कहती हैं—हे चन्द्रहास (तलवार) ! श्रीरघुनाथजीके विरहकी अग्निसे उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलनको तू हर ले। हे तलवार ! तू शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है (अर्थात् तेरी धार ठंढी और तेज है), तू मेरे दुःखके बोझको हर ले ॥ ३ ॥

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा ॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥४॥

सीताजीके ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा। तब मय दानवकी पुत्री मन्दोदरीने नीति कहकर उसे समझाया। तब रावणने सब राक्षसियोंको बुलाकर कहा कि जाकर सीताको बहुत प्रकारसे भय दिखलाओ ॥४॥

मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना ॥५॥

यदि महीनेभरमें यह कहा न माने तो मैं इसे तलवार निकालकर मार डालूँगा ॥ ५ ॥

दो०–भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद ॥ १० ॥

[यों कहकर] रावण घर चला गया। यहाँ राक्षसियोंके समूह बहुत-से बुरे रूप धरकर सीताजीको भय दिखलाने लगे ॥ १० ॥

चौ०–त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका ॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना ॥१॥

उनमें एक त्रिजटा नामकी राक्षसी थी। उसकी श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति थी और वह विवेक (ज्ञान) में निपुण थी। उसने सबोंको बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा— सीताजीकी सेवा करके अपना कल्याण कर लो ॥ १ ॥

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी ॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा ॥२॥

स्वप्नमें [मैंने देखा कि] एक बंदरने लङ्का जला दी। राक्षसोंकी सारी सेना मार डाली गयी। रावण नंगा है और गदहेपर सवार है। उसके सिर मुँड़े हुए हैं, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं ॥ २ ॥

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई ॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई ॥३॥

इस प्रकारसे वह दक्षिण (यमपुरीकी) दिशाको जा रहा है और मानो लङ्का विभीषणने पायी है। नगरमें श्रीरामचन्द्रजीकी दुहाई फिर गयी। तब प्रभुने सीताजीको बुला भेजा ॥ ३ ॥

यह सपना मैं कहउँ पुकारी । होइहि सत्य गएँ दिन चारी ॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं । जनकसुता के चरनन्हि परीं ॥४॥

मैं पुकारकर (निश्चयके साथ) कहती हूँ कि यह स्वप्न चार (कुछ ही) दिनों बाद सत्य होकर रहेगा । उसके वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गयीं और जानकीजीके चरणोंपर गिर पड़ीं ॥ ४ ॥

दो०—जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच ।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच ॥ ११ ॥

तब (इसके बाद) वे सब जहाँ-तहाँ चली गयीं । सीताजी मनमें सोच करने लगीं कि एक महीना बीत जानेपर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा ॥ ११ ॥

चौ०—त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी । मातु बिपति संगिनि तैं मोरी ॥
तजौं देह करु बेगि उपाई । दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई ॥१॥

सीताजी हाथ जोड़कर त्रिजटासे बोलीं—हे माता ! तू मेरी विपत्तिकी संगिनी है । जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ । विरह असह्य हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता ॥ १ ॥

आनि काठ रचु चिता बनाई । मातु अनल पुनि देहि लगाई ॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी । सुनै को श्रवन सूल सम बानी ॥२॥

काठ लाकर चिता बनाकर सजा दे । हे माता ! फिर उसमें आग लगा दे । हे सयानी ! तू मेरी प्रीतिको सत्य कर दे । रावणकी शूलके समान दुःख देनेवाली वाणी कानोंसे कौन सुने ? ॥ २ ॥

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि । प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि ॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी ३

सीताजीके वचन सुनकर त्रिजटाने चरण पकड़कर उन्हें समझाया और प्रभुका प्रताप, बल और सुयश सुनाया । [उसने कहा—] हे सुकुमारी ! सुनो, रात्रिके समय आग नहीं मिलेगी । ऐसा कहकर वह अपने घर चली गयी ३

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला । मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला ॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा । अवनि न आवत एकउ तारा ॥४॥

सीताजी [मन-ही-मन] कहने लगीं—[क्या करूँ] विधाता ही विपरीत हो गया। न आगी मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी। आकाशमें अंगारे प्रकट दिखायी दे रहे हैं, पर पृथ्वीपर एक भी तारा नहीं आता ॥४॥

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥५॥

चन्द्रमा अग्निमय है, किन्तु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता! हे अशोकवृक्ष! मेरी विनती सुन। मेरा शोक हर ले और अपना [अशोक] नाम सत्य कर ॥ ५ ॥

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥६॥

तेरे नये-नये कोमल पत्ते अग्निके समान हैं। अग्नि दे, विरह-रोगका अन्त मत कर (अर्थात् विरह-रोगको बढ़ाकर सीमातक न पहुँचा)। सीताजीको विरहसे परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान्‌जीको कल्पके समान बीता

सो०—कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥१२॥

तब हनुमान्‌जीने हृदयमें विचारकर [सीताजीके सामने] अँगूठी डाल दी, मानो अशोकने अंगारा दे दिया। [यह समझकर] सीताजीने हर्षित होकर उठकर उसे हाथमें ले लिया ॥ १२ ॥

चौ०—तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥१॥

तब उन्होंने रामनामसे अंकित अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठीको पहचानकर सीताजी आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगीं और हर्ष तथा विषादसे हृदयमें अकुला उठीं ॥ १ ॥

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥२॥

[वे सोचने लगीं—] श्रीरघुनाथजी तो सर्वथा अजेय हैं, उन्हें

कौन जीत सकता है ? और मायासे ऐसी (मायाके उपादानसे सर्वथा रहित दिव्य, चिन्मय) अँगूठी बनायी नहीं जा सकती। सीताजी मनमें अनेक प्रकारके विचार कर रही थीं। इसी समय हनुमान्‌जी मधुर वचन बोले—॥२॥

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥३॥

वे श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करने लगे, [जिनके] सुनते ही सीताजीका दुःख भाग गया। वे कान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं। हनुमान्‌जीने आदिसे लेकर सारी कथा कह सुनायी ॥ ३ ॥

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ॥४॥

[सीताजी बोलीं—] जिसने कानोंके लिये अमृतरूप यह सुन्दर कथा कही, वह हे भाई ! प्रकट क्यों नहीं होता ? तब हनुमान्‌जी पास चले गये। उन्हें देखकर सीताजी फिरकर (मुख फेरकर) बैठ गयीं; उनके मनमें आश्चर्य हुआ ॥ ४ ॥

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥५॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता जानकी ! मैं श्रीरामजीका दूत हूँ। करुणानिधानकी सच्ची शपथ करता हूँ। हे माता ! यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ। श्रीरामजीने मुझे आपके लिये यह सहिदानी (निशानी या पहिचान) दी है ॥ ५ ॥

नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥६॥

[सीताजीने पूछा—] नर और वानरका संग कहो कैसे हुआ ? तब हनुमान्‌जीने जैसे संग हुआ था, वह सब कथा कही ॥ ६ ॥

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥१३॥

हनुमान्‌जीके प्रेमयुक्त वचन सुनकर सीताजीके मनमें विश्वास उत्पन्न

हो गया। उन्होंने जान लिया कि यह मन, वचन और कर्मसे कृपासागर श्रीरघुनाथजीका दास है ॥ १३ ॥

चौ०—हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥१॥

भगवान्‌का जन (सेवक) जानकर अत्यन्त गाढ़ी प्रीति हो गयी। नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया। [सीताजीने कहा—]हे तात हनुमान्! विरहसागरमें डूबती हुई मुझको तुम जहाज हुए ॥ १ ॥

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥२॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, अब छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित खरके शत्रु सुखधाम प्रभुका कुशल-मंगल कहो। श्रीरघुनाथजी तो कोमलहृदय और कृपालु हैं। फिर हे हनुमान्! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है? ॥ २ ॥

सहज बानि सेवक सुख दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥३॥

सेवकको सुख देना उनकी स्वाभाविक बान है। वे श्रीरघुनाथजी क्या कभी मेरी भी याद करते हैं? हे तात! क्या कभी उनके कोमल साँवले अंगोंको देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे ॥ ३ ॥

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥४॥

[मुँहसे] वचन नहीं निकलता, नेत्रोंमें [विरहके आँसुओंका] जल भर आया। [बड़े दुःखसे वे बोलीं—] हा नाथ! आपने मुझे बिल्कुल ही भुला दिया! सीताजीको विरहसे परम व्याकुल देखकर हनुमान्‌जी कोमल और विनीत वचन बोले—॥ ४ ॥

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥५॥

हे माता ! सुन्दर कृपाके धाम प्रभु भाई लक्ष्मणजीके सहित [शरीरसे] कुशल हैं, परन्तु आपके दुःखसे दुखी हैं। हे माता ! मनमें ग्लानि न मानिये (मन छोटा करके दुःख न कीजिये)। श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें आपसे दूना प्रेम है ॥ ५ ॥

दो०—रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गद्‌गद भयउ भरे बिलोचन नीर ॥१४॥

हे माता ! अब धीरज धरकर श्रीरघुनाथजीका सन्देश सुनिये। ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रेमसे गद्गद हो गये। उनके नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया ॥ १४ ॥

चौ०—कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता ॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥१॥

[हनुमान्‌जी बोले—] श्रीरामचन्द्रजीने कहा है कि हे सीते ! तुम्हारे वियोगमें मेरे लिये सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गये हैं। वृक्षोंके नये-नये कोमल पत्ते मानो अग्निके समान, रात्रि कालरात्रिके समान, चन्द्रमा सूर्यके समान, ॥ १ ॥

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥२॥

और कमलोंके वन भालोंके वनके समान हो गये हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करनेवाले थे वे ही अब पीड़ा देने लगे हैं। त्रिविध (शीतल, मन्द, सुगन्ध) वायु साँपके श्वासके समान (जहरीली और गरम) हो गयी है ॥ २ ॥

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई ॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥३॥

मनका दुःख कह डालनेसे भी कुछ घट जाता है। पर कहूँ किससे ? यह दुःख कोई जानता नहीं। हे प्रिये ! मेरे और तेरे प्रेमका तत्त्व (रहस्य), एक मेरा मन ही जानता है, ॥ ३ ॥

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥४॥

और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है! बस, मेरे प्रेमका सार इतनेमें ही समझ ले। प्रभुका सन्देश सुनते ही जानकीजी प्रेममें मग्न हो गयीं। उन्हें शरीरकी सुध न रही॥४॥

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥५॥

हनुमान्‌जीने कहा—हे माता! हृदयमें धैर्य धारण करो और सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीका स्मरण करो। श्रीरघुनाथजीकी प्रभुताको हृदयमें लाओ और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो॥५॥

दो०—निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥१५॥

राक्षसोंके समूह पतंगोंके समान और श्रीरघुनाथजीके बाण अग्निके समान हैं। हे माता! हृदयमें धैर्य धारण करो और राक्षसोंको जला ही समझो॥१५॥

चौ०—जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की॥१॥

श्रीरामचन्द्रजीने यदि खबर पायी होती तो वे विलम्ब न करते। हे जानकीजी! रामबाणरूपी सूर्यके उदय होनेपर राक्षसोंकी सेनारूपी अन्धकार कहाँ रह सकता है?॥१॥

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥२॥

हे माता! मैं आपको अभी यहाँसे लिवा जाऊँ। पर श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ है, मुझे प्रभु (उन) की आज्ञा नहीं है। [अतः] हे माता! कुछ दिन और धीरज धरो। श्रीरामचन्द्रजी वानरोंसहित यहाँ आवेंगे॥२॥

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥३॥

और राक्षसोंको मारकर आपको ले जायँगे। नारद आदि [ऋषि-मुनि] तीनों लोकोंमें उनका यश गावेंगे। [सीताजीने कहा—] हे पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान (नन्हे-नन्हे-से) होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान् योद्धा हैं ॥ ३ ॥

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा ॥४॥

अतः मेरे हृदयमें बड़ा भारी सन्देह होता है [कि तुम-जैसे बंदर राक्षसोंको कैसे जीतेंगे]। यह सुनकर हनुमान्‌जीने अपना शरीर प्रकट किया। सोनेके पर्वत (सुमेरु) के आकारका (अत्यन्त विशाल) शरीर था, जो युद्धमें शत्रुओंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाला, अत्यन्त बलवान् और वीर था ॥४॥

सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ ॥५॥

तब (उसे देखकर) सीताजीके मनमें विश्वास हुआ। हनुमान्‌जीने फिर छोटा रूप धारण कर लिया ॥ ५ ॥

दो०—सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल ॥१६॥

हे माता! सुनो, वानरोंमें बहुत बल-बुद्धि नहीं होती। परन्तु प्रभुके प्रतापसे बहुत छोटा सर्प भी गरुड़को खा सकता है (अत्यन्त निर्बल भी महान् बलवान्‌को मार सकता है) ॥ १६ ॥

चौ०—मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी ॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना ॥१॥

भक्ति, प्रताप, तेज और बलसे सनी हुई हनुमान्‌जीकी वाणी सुनकर सीताजीके मनमें सन्तोष हुआ। उन्होंने श्रीरामजीके प्रिय जानकर हनुमान्‌जीको आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और शीलके निधान होओ ॥ १ ॥

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥२॥

हे पुत्र! तुम अजर (बुढ़ापेसे रहित), अमर और गुणोंके खजाने

होओ। श्रीरघुनाथजी तुमपर बहुत कृपा करें! 'प्रभु कृपा करें' ऐसा कानोंसे सुनते ही हनुमान्‌जी पूर्ण प्रेममें मग्न हो गये ॥ २ ॥

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥३॥

हनुमान्‌जीने बार-बार सीताजीके चरणोंमें सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर कहा—हे माता! अब मैं कृतार्थ हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) है, यह बात प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥४॥

हे माता! सुनो, सुन्दर फलवाले वृक्षोंको देखकर मुझे बड़ी ही भूख लग आयी है। [सीताजीने कहा—] हे बेटा! सुनो, बड़े भारी योद्धा राक्षस इस वनकी रखवाली करते हैं ॥ ४ ॥

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥५॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता! यदि आप मनमें सुख मानें (प्रसन्न होकर आज्ञा दें) तो मुझे उनका भय तो बिल्कुल नहीं है ॥ ५ ॥

दो०—देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु ॥ १७ ॥

हनुमान्‌जीको बुद्धि और बलमें निपुण देखकर जानकीजीने कहा—जाओ। हे तात! श्रीरघुनाथजीके चरणोंको हृदयमें धारण करके मीठे फल खाओ ॥ १७ ॥

चौ०—चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥१॥

वे सीताजीको सिर नवाकर चले और बागमें घुस गये। फल खाये और वृक्षोंको तोड़ने लगे। वहाँ बहुत-से योद्धा रखवाले थे। उनमेंसे कुछको मार डाला और कुछने जाकर रावणसे पुकार की—॥ १ ॥

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥२॥

[और कहा—] हे नाथ! एक बड़ा भारी बंदर आया है। उसने अशोकवाटिका उजाड़ डाली। फल खाये, वृक्षोंको उखाड़ डाला और रखवालोंको मसल-मसलकर जमीनपर डाल दिया ॥ २ ॥

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना ॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे ॥३॥

यह सुनकर रावणने बहुत-से योद्धा भेजे। उन्हें देखकर हनुमान्जीने गर्जना की। हनुमान्जीने सब राक्षसोंको मार डाला, कुछ जो अधमरे थे चिल्लाते हुए गये ॥ ३ ॥

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा ॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा ॥४॥

फिर रावणने अक्षयकुमारको भेजा। वह असंख्य श्रेष्ठ योद्धाओंको साथ लेकर चला। उसे आते देखकर हनुमान्जीने एक वृक्ष [हाथमें] लेकर ललकारा और उसे मारकर महाध्वनि (बड़े जोर) से गर्जना की ॥४॥

दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि ॥ १८ ॥

उन्होंने सेनामेंसे कुछको मार डाला और कुछको मसल डाला और कुछको पकड़-पकड़कर धूलमें मिला दिया। कुछने फिर जाकर पुकार की कि हे प्रभु! बंदर बहुत ही बलवान् है ॥ १८ ॥

चौ०—सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना ॥
मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही ॥१॥

पुत्रका वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा और उसने [अपने जेठे पुत्र] बलवान् मेघनादको भेजा। [उससे कहा कि—] हे पुत्र! मारना नहीं, उसे बाँध लाना। उस बंदरको देखा जाय कि कहाँका है ॥ १ ॥

चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा ॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा ॥२॥

इन्द्रको जीतनेवाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला। भाईका मारा

जाना सुन उसे क्रोध हो आया। हनुमान्‌जीने देखा कि अबकी भयानक योद्धा आया है। तब वे कटकटाकर गर्जे और दौड़े ॥ २ ॥

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा ॥
रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा ॥३॥

उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और [उसके प्रहारसे] लंकेश्वर रावणके पुत्र मेघनादको बिना रथका कर दिया (रथको तोड़कर उसे नीचे पटक दिया)। उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनको पकड़-पकड़कर हनुमान्‌जी अपने शरीरसे मसलने लगे ॥ ३ ॥

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा ॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई ॥४॥

उन सबको मारकर फिर मेघनादसे लड़ने लगे। [लड़ते हुए वे ऐसे मालूम होते थे] मानो दो गजराज (श्रेष्ठ हाथी) भिड़ गये हों। हनुमान्‌जी उसे एक घूँसा मारकर वृक्षपर जा चढ़े। उसको क्षणभरके लिये मूर्छा आ गयी ॥४॥

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया ॥५॥

फिर उठकर उसने बहुत माया रची; परन्तु पवनके पुत्र उससे जीते नहीं जाते ॥ ५ ॥

दो०–ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार ॥ १९ ॥

अन्तमें उसने ब्रह्मास्त्रका सन्धान (प्रयोग) किया। तब हनुमान्‌जीने मनमें विचार किया कि यदि ब्रह्मास्त्रको नहीं मानता हूँ तो उसकी अपार महिमा मिट जायगी ॥ १९ ॥

चौ०–ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा ॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ ॥१॥

उसने हनुमान्‌जीको ब्रह्मबाण मारा, [जिसके लगते ही वे वृक्षसे नीचे गिर पड़े] परन्तु गिरते समय भी उन्होंने बहुत-सी सेना मार डाली। जब उसने देखा कि हनुमान्‌जी मूर्छित हो गये हैं, तब वह उनको नागपाशसे बाँधकर ले गया ॥ १ ॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥२॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! सुनो, जिनका नाम जपकर ज्ञानी (विवेकी) मनुष्य संसार (जन्म-मरण) के बन्धनको काट डालते हैं, उनका दूत कहीं बन्धनमें आ सकता है ? किन्तु प्रभुके कार्यके लिये हनुमान्‌जीने स्वयं अपनेको बँधा लिया ॥ २ ॥

कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥३॥

बंदरका बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और कौतुकके लिये (तमाशा देखनेके लिये) सब सभामें आये। हनुमान्‌जीने जाकर रावणकी सभा देखी। उसकी अत्यन्त प्रभुता (ऐश्वर्य) कुछ कही नहीं जाती ॥ ३ ॥

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥४॥

देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े बड़ी नम्रताके साथ भयभीत हुए सब रावणकी भौं ताक रहे हैं (उसका रुख देख रहे हैं)। उसका ऐसा प्रताप देखकर भी हनुमान्‌जीके मनमें जरा भी डर नहीं हुआ। वे ऐसे निःशङ्क खड़े रहे जैसे सर्पोंके समूहमें गरुड़ निःशङ्क (निर्भय) रहते हैं ॥ ४ ॥

दो०—कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद॥२०॥

हनुमान्‌जीको देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ खूब हँसा। फिर पुत्रवधका स्मरण किया तो उसके हृदयमें विषाद उत्पन्न हो गया ॥ २० ॥

चौ०—कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥१॥

लङ्कापति रावणने कहा—रे वानर ! तू कौन है ? किसके बलपर तूने वनको उजाड़कर नष्ट कर डाला ? क्या तूने कभी मुझे (मेरा नाम और यश) कानोंसे नहीं सुना ? रे शठ ! मैं तुझे अत्यन्त निःशंक देख रहा हूँ ॥१॥

मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥२॥

तूने किस अपराधसे राक्षसोंको मारा? रे मूर्ख! बता, क्या तुझे प्राण जानेका भय नहीं है? [हनुमान्‌जीने कहा—] हे रावण! सुन, जिनका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके समूहोंकी रचना करती है; ॥ २ ॥

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥३॥

जिनके बलसे हे दशशीश! ब्रह्मा, विष्णु, महेश [क्रमशः] सृष्टिका सृजन, पालन और संहार करते हैं; जिनके बलसे सहस्र मुख (फणों) वाले शेषजी पर्वत और वनसहित समस्त ब्रह्माण्डको सिरपर धारण करते हैं; ॥३॥

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥४॥

जो देवताओंकी रक्षाके लिये नाना प्रकारकी देह धारण करते हैं और जो तुम्हारे-जैसे मूर्खोंको शिक्षा देनेवाले हैं; जिन्होंने शिवजीके कठोर धनुषको तोड़ डाला और उसीके साथ राजाओंके समूहका गर्व चूर्ण कर दिया ॥४॥

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥५॥

जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालिको मार डाला, जो सब-के-सब अतुलनीय बलवान् थे; ॥ ५ ॥

दो०—जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥२१॥

जिनके लेशमात्र बलसे तुमने समस्त चराचर जगत्‌को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नीको तुम [चोरीसे] हर लाये हो; मैं उन्हींका दूत हूँ २१

चौ०—जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा॥१॥

मैं तुम्हारी प्रभुताको खूब जानता हूँ! सहस्रबाहुसे तुम्हारी लड़ाई हुई थी और बालिसे युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया था! हनुमान्‌जीके

[मार्मिक] वचन सुनकर रावणने हँसकर बात टाल दी॥ १॥

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥२॥

हे [राक्षसोंके] स्वामी! मुझे भूख लगी थी, [इसलिये] मैंने फल खाये और वानर-स्वभावके कारण वृक्ष तोड़े। हे [निशाचरोंके] मालिक! देह सबको परम प्रिय है। कुमार्गपर चलनेवाले (दुष्ट) राक्षस जब मुझे मारने लगे, ॥ २॥

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥३॥

तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उसपर तुम्हारे पुत्रने मुझको बाँध लिया। [किन्तु] मुझे अपने बाँधे जानेकी कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो अपने प्रभुका कार्य किया चाहता हूँ॥ ३॥

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥४॥

हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने पवित्र कुलका विचार करके देखो और भ्रमको छोड़कर भक्तभयहारी भगवान्‌को भजो॥ ४॥

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥५॥

जो देवता, राक्षस और समस्त चराचरको खा जाता है, वह काल भी जिनके डरसे अत्यन्त डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहनेसे जानकीजीको दे दो॥ ५॥

दो०—प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥ २२॥

खरके शत्रु श्रीरघुनाथजी शरणागतोंके रक्षक और दयाके समुद्र हैं। शरण जानेपर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरणमें रख लेंगे २२

चौ०–राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥१॥

तुम श्रीरामजीके चरणकमलोंको हृदयमें धारण करो और लङ्काका अचल राज्य करो। ऋषि पुलस्त्यजीका यश निर्मल चन्द्रमाके समान है। उस चन्द्रमामें तुम कलंक न बनो॥ १॥

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥२॥

रामनामके विना वाणी शोभा नहीं पाती, मद-मोहको छोड़, विचारकर देखो। हे देवताओंके शत्रु! सब गहनोंसे सजी हुई सुन्दरी स्त्री भी कपड़ोंके विना (नंगी) शोभा नहीं पाती॥ २॥

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥३॥

रामविमुख पुरुषकी सम्पत्ति और प्रभुता रही हुई भी चली जाती है और उसका पाना न पानेके समान है। जिन नदियोंके मूलमें कोई जलस्रोत नहीं है (अर्थात् जिन्हें केवल बरसातका ही आसरा है) वे वर्षा बीत जानेपर फिर तुरंत ही सूख जाती हैं॥ ३॥

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥४॥

हे रावण! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रामविमुखकी रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं है। हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी श्रीरामजीके साथ द्रोह करनेवाले तुमको नहीं बचा सकते॥ ४॥

दो०–मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥२३॥

मोह ही जिसका मूल है ऐसे (अज्ञानजनित), बहुत पीड़ा देनेवाले, तमरूप अभिमानका त्याग कर दो और रघुकुलके स्वामी, कृपाके समुद्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो॥ २३॥

चौ०—जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी ॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी ॥१॥

यद्यपि हनुमान्‌जीने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीतिसे सनी हुई बहुत ही हितकी वाणी कही; तो भी वह महान् अभिमानी रावण बहुत हँसकर (व्यंगसे) बोला कि हमें यह बंदर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला ! ॥ १ ॥

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही ॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना ॥२॥

रे दुष्ट ! तेरी मृत्यु निकट आ गयी है । अधम ! मुझे शिक्षा देने चला है । हनुमान्‌जीने कहा—इससे उलटा ही होगा (अर्थात् मृत्यु तेरी निकट आयी है, मेरी नहीं)। यह तेरा मतिभ्रम (बुद्धिका फेर) है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है ॥ २ ॥

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए ॥३॥

हनुमान्‌जीके वचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया [और बोला—] अरे ! इस मूर्खका प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते ! सुनते ही राक्षस उन्हें मारने दौड़े। उसी समय मन्त्रियोंके साथ विभीषणजी वहाँ आ पहुँचे ॥ ३ ॥

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता ॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई ॥४॥

उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावणसे कहा कि दूतको मारना नहीं चाहिये, यह नीतिके विरुद्ध है। हे गोसाईं ! कोई दूसरा दण्ड दिया जाय। सबने कहा—भाई ! यह सलाह उत्तम है ॥ ४ ॥

सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर ॥५॥

यह सुनते ही रावण हँसकर बोला—अच्छा तो, बंदरको अंग-भंग करके भेज (लौटा) दिया जाय ॥ ५ ॥

दो०—कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥ २४ ॥

मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बंदरकी ममता पूँछपर होती है। अतः तेलमें कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछमें बाँधकर फिर आग लगा दो २४

चौ०—पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥१॥

जब बिना पूँछका यह बंदर वहाँ (अपने स्वामीके पास) जायगा, तब यह मूर्ख अपने मालिकको साथ ले आयेगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो देखूँ!॥ १॥

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना॥२॥

यह वचन सुनते ही हनुमान्‌जी मनमें मुसकराये [और मन-ही-मन बोले कि] मैं जान गया, सरस्वतीजी [इसे ऐसी बुद्धि देनेमें] सहायक हुई हैं। रावणके वचन सुनकर मूर्ख राक्षस वही (पूँछमें आग लगानेकी) तैयारी करने लगे॥ २॥

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥३॥

[पूँछके लपेटनेमें इतना कपड़ा और घी-तेल लगा कि] नगरमें कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया। हनुमान्‌जीने ऐसा खेल किया कि पूँछ बढ़ गयी (लंबी हो गयी)। नगरवासी लोग तमाशा देखने आये। वे हनुमान्‌जीको पैरसे ठोकर मारते हैं और उनकी बहुत हँसी करते हैं॥ ३॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता॥४॥

ढोल बजते हैं, सब लोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान्‌जीको नगरमें फिराकर फिर पूँछमें आग लगा दी। अग्निको जलते हुए देखकर हनुमान्‌जी तुरंत ही बहुत छोटे रूपमें हो गये॥ ४॥

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥५॥

बन्धनसे निकलकर वे सोनेकी अटारियोंपर जा चढ़े। उनको देखकर राक्षसोंकी स्त्रियाँ भयभीत हो गयीं॥ ५॥

दो०–हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास ॥ २५ ॥

उस समय भगवान्‌की प्रेरणासे उनचासों पवन चलने लगे। हनुमान्‌जी अट्टहास करके गर्जे और बढ़कर आकाशसे जा लगे ॥ २५ ॥

चौ०–देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई ॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला ॥१॥

देह बड़ी विशाल, परन्तु बहुत ही हल्की (फुर्तीली) है! वे दौड़कर एक महलसे दूसरे महलपर चढ़ जाते हैं। नगर जल रहा है, लोग बेहाल हो गये हैं। आगकी करोड़ों भयङ्कर लपटें झपट रही हैं ॥ १ ॥

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा ॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई ॥२॥

हाय बप्पा! हाय मैया! इस अवसरपर हमें कौन बचावेगा? [चारों ओर] यही पुकार सुनायी पड़ रही है। हमने तो पहले ही कहा था कि यह वानर नहीं है, वानरका रूप धरे कोई देवता है! ॥ २ ॥

साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं ॥३॥

साधुके अपमानका यह फल है कि नगर अनाथके नगरकी तरह जल रहा है। हनुमान्‌जीने एक ही क्षणमें सारा नगर जला डाला। एक विभीषणका घर नहीं जलाया ॥ ३ ॥

ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा ॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ॥४॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! जिन्होंने अग्निको बनाया, हनुमान्‌जी उन्हींके दूत हैं। इसी कारण वे अग्निसे नहीं जले। हनुमान्‌जीने उलट-पलटकर (एक ओरसे दूसरी ओरतक) सारी लंका जला दी। फिर वे समुद्रमें कूद पड़े ॥ ४ ॥

दो०–पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघुरूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥ २६ ॥

पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर छोटा-सा रूप धारण कर हनुमान्‌जी श्रीजानकीजीके सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए ॥ २६ ॥

चौ०—मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा । जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ । हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥१॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता ! मुझे कोई चिह्न (पहचान) दीजिये, जैसे श्रीरघुनाथजीने मुझे दिया था। तब सीताजीने चूड़ामणि उतारकर दी । हनुमान्‌जीने उसको हर्षपूर्वक ले लिया ॥ १ ॥

कहेहु तात अस मोर प्रनामा । सब प्रकार प्रभु पूरनकामा ॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥२॥

[जानकीजीने कहा-] हे तात ! मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना—हे प्रभु ! यद्यपि आप सब प्रकारसे पूर्णकाम हैं (आप-को किसी प्रकारकी कामना नहीं है), तथापि दीनों (दुखियों) पर दया करना आपका विरद है [और मैं दीन हूँ,] अतः उस विरदको याद करके, हे नाथ ! मेरे भारी संकटको दूर कीजिये ॥ २ ॥

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु । बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु ॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा । तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा ॥३॥

हे तात ! इन्द्रपुत्र जयन्तकी कथा (घटना) सुनाना और प्रभुको उनके बाणका प्रताप समझाना (स्मरण कराना) । यदि महीनेभरमें नाथ न आये तो फिर मुझे जीती न पायेंगे ॥ ३ ॥

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना । तुम्हहू तात कहत अब जाना ॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती । पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती ॥४॥

हे हनुमान् ! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रक्खूँ । हे तात ! तुम भी अब जानेको कह रहे हो ! तुमको देखकर छाती ठंडी हुई थी । फिर मुझे वही दिन और वही रात ! ॥ ४ ॥

दो०—जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह ।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ॥ २७ ॥

हनुमान्‌जीने जानकीजीको समझाकर बहुत प्रकारसे धीरज दिया और उनके चरणकमलोंमें सिर नवाकर श्रीरामजीके पास गमन किया ॥ २७ ॥

चौ०—चलत महाधुनि गर्जेसि भारी । गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी ॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा । सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा॥ १॥

चलते समय उन्होंने महाध्वनिसे भारी गर्जन किया, जिसे सुनकर राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिरने लगे । समुद्र लाँघकर वे इस पार आये और उन्होंने वानरोंको किलकिला शब्द (हर्षध्वनि) सुनाया ॥ १ ॥

हरषे सब बिलोकि हनुमाना । नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना ॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा । कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा ॥२॥

हनुमान्‌जीको देखकर सब हर्षित हो गये और तब वानरोंने अपना नया जन्म समझा । हनुमान्‌जीका मुख प्रसन्न है और शरीरमें तेज विराजमान है, [जिससे उन्होंने समझ लिया कि] ये श्रीरामचन्द्रजीका कार्य कर आये हैं ॥ २ ॥

मिले सकल अति भए सुखारी । तलफत मीन पाव जिमि बारी ॥
चले हरषि रघुनायक पासा । पूँछत कहत नवल इतिहासा ॥३॥

सब हनुमान्‌जीसे मिले और बहुत ही सुखी हुए । जैसे तड़पती हुई मछलीको जल मिल गया हो । सब हर्षित होकर नये-नये इतिहास (वृत्तान्त) पूछते-कहते हुए श्रीरघुनाथजीके पास चले ॥ ३ ॥

तब मधुबन भीतर सब आए । अंगद संमत मधु फल खाए ॥
रखवारे जब बरजन लागे । मुष्टि प्रहार हनत सब भागे ॥४॥

तब सब लोग मधुवनके भीतर आये और अंगदकी सम्मतिसे सबने मधुर फल [या मधु और फल] खाये । जब रखवाले बरजने लगे, तब घूँसोंकी मार मारते ही सब रखवाले भाग छूटे ॥ ४ ॥

दो०—जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज ।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज ॥ २८ ॥

उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अंगद वन उजाड़ रहे हैं । यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि वानर प्रभुका कार्य कर आये हैं ॥२८॥

चौ०-जौं न होति सीता सुधि पाई । मधुबन के फल सकहिं कि खाई ॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा ॥१॥

यदि सीताजीकी खबर न पायी होती तो क्या वे मधुवनके फल खा सकते थे ? इस प्रकार राजा सुग्रीव मनमें विचार कर ही रहे थे कि समाज-सहित वानर आ गये ॥ १ ॥

आइ सबन्हि नावा पद सीसा । मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा ॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी । राम कृपाँ भा काजु बिसेषी ॥२॥

सबने आकर सुग्रीवके चरणोंमें सिर नवाया । कपिराज सुग्रीव सभीसे बड़े प्रेमके साथ मिले । उन्होंने कुशल पूछी, [तब वानरोंने उत्तर दिया—] आपके चरणोंके दर्शनसे सब कुशल है । श्रीरामजीकी कृपासे विशेष कार्य हुआ (कार्यमें विशेष सफलता हुई है) ॥ २ ॥

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना । राखे सकल कपिन्ह के प्राना ॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥३॥

हे नाथ ! हनुमान्‌ने ही सब कार्य किया और सब वानरोंके प्राण बचा लिये । यह सुनकर सुग्रीवजी हनुमान्‌जीसे फिर मिले और सब वानरों-समेत श्रीरघुनाथजीके पास चले ॥ ३ ॥

राम कपिन्ह जब आवत देखा । किएँ काजु मन हरष बिसेषा ॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई । परे सकल कपि चरनन्हि जाई ॥४॥

श्रीरामजीने जब वानरोंको कार्य किये हुए आते देखा तब उनके मनमें विशेष हर्ष हुआ । दोनों भाई स्फटिक शिला पर बैठे थे । सब वानर जाकर उनके चरणोंपर गिर पड़े ॥ ४ ॥

दो०-प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुना पुंज ।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज ॥ २९ ॥

दयाकी राशि श्रीरघुनाथजी सबसे प्रेमसहित गले लगाकर मिले और कुशल पूछी । [वानरोंने कहा—] हे नाथ ! आपके चरणकमलोंके दर्शन पानेसे अब कुशल है ॥ २९ ॥

चौ०—जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥१॥

जाम्बवान्‌ने कहा—हे रघुनाथजी! सुनिये। हे नाथ! जिसपर आप दया करते हैं, उसे सदा कल्याण और निरन्तर कुशल है! देवता, मनुष्य और मुनि सभी उसपर प्रसन्न रहते हैं॥ १॥

सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥२॥

वही विजयी है, वही विनयी है और वही गुणोंका समुद्र बन जाता है! उसीका सुन्दर यश तीनों लोकोंमें प्रकाशित होता है। प्रभुकी कृपासे सब कार्य हुआ। आज हमारा जन्म सफल हो गया॥ २॥

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥३॥

हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान्‌ने जो करनी की उसका हजार मुखोंसे भी वर्णन नहीं किया जा सकता। तब जाम्बवान्‌ने हनुमान्‌जीके सुन्दर चरित्र (कार्य) श्रीरघुनाथजीको सुनाये॥ ३॥

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥४॥

[वे चरित्र] सुननेपर कृपानिधि श्रीरामचन्द्रजीके मनको बहुत ही अच्छे लगे। उन्होंने हर्षित होकर हनुमान्‌जीको फिर हृदयसे लगा लिया और कहा—हे तात! कहो, सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणोंकी रक्षा करती हैं?॥ ४॥

दो०—नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥३०॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] आपका नाम रात-दिन पहरा देनेवाला है, आपका ध्यान ही किंवाड़ है। नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये रहती हैं, यही ताला लगा है; फिर प्राण जायँ तो किस मार्गसे?॥ ३०॥

चौ०–चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥१॥

चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि [उतारकर] दी। श्रीरघुनाथजीने उसे लेकर हृदयसे लगा लिया। [हनुमान्‌जीने फिर कहा—] हे नाथ! दोनों नेत्रोंमें जल भरकर जानकीजीने मुझसे कुछ वचन कहे—॥ १॥

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥२॥

छोटे भाईसमेत प्रभुके चरण पकड़ना [और कहना कि] आप दीनबन्धु हैं, शरणागतके दुःखोंको हरनेवाले हैं। और मैं मन, वचन और कर्मसे आपके चरणोंकी अनुरागिणी हूँ। फिर स्वामी (आप) ने मुझे किस अपराधसे त्याग दिया? ॥ २॥

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥३॥

[हाँ] एक दोष मैं अपना [अवश्य] मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गये। किन्तु हे नाथ! यह तो नेत्रोंका अपराध है जो प्राणोंके निकलनेमें हठपूर्वक बाधा देते हैं॥ ३॥

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥४॥

विरह अग्नि है, शरीर रूई है और श्वास पवन है; इस प्रकार [अग्नि और पवनका संयोग होनेसे] यह शरीर क्षणमात्रमें जल सकता है। परन्तु नेत्र अपने हितके लिये (प्रभुका स्वरूप देखकर सुखी होनेके लिये) जल (आँसू) बरसाते हैं, जिससे विरहकी आगसे भी देह जलने नहीं पाती॥४॥

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥५॥

सीताजीकी विपत्ति बहुत बड़ी है। हे दीनदयालु! वह बिना कही ही अच्छी है, (कहनेसे आपको बड़ा क्लेश होगा)॥ ५॥

दो०–निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥ ३१॥

हे करुणानिधान ! उनका एक-एक पल कल्पके समान बीतता है । अतः हे प्रभु ! तुरंत चलिये और अपनी भुजाओंके बलसे दुष्टोंके दलको जीतकर सीताजीको ले आइये ॥ ३१ ॥

चौ०—सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना ॥
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही ॥ १ ॥

सीताजीका दुःख सुनकर सुखके धाम प्रभुके कमलनेत्रोंमें जल भर आया [और वे बोले—] मन, वचन और शरीरसे जिसे मेरी ही गति (मेरा ही आश्रय) है उसे क्या स्वप्नमें भी विपत्ति हो सकती है ? ॥ १ ॥

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई ॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी ॥ २ ॥

हनुमान्‌जीने कहा—हे प्रभु ! विपत्ति तो वही (तभी) है जब आपका भजन-स्मरण न हो। हे प्रभो ! राक्षसोंकी बात ही कितनी है ! आप शत्रुको जीतकर जानकीजीको ले आवेंगे ॥ २ ॥

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥ ३ ॥

[भगवान् कहने लगे—] हे हनुमान् ! सुन; तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार (बदलेमें उपकार) तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं ॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता ॥ ४ ॥

हे पुत्र ! सुन; मैंने मनमें [खूब] विचार करके देख लिया कि मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता ! देवताओंके रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान्‌जीको देख रहे हैं। नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भरा है और शरीर अत्यन्त पुलकित है ॥ ४ ॥

दो०—सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत ॥ ३२ ॥

प्रभुके वचन सुनकर और उनके [प्रसन्न] मुख तथा [पुलकित] अंगोंको देखकर हनुमान्‌जी हर्षित हो गये। और प्रेममें विकल होकर 'हे भगवन्! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़े ॥ ३२ ॥

चौ०—बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा ॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥१॥

प्रभु उनको बार-बार उठाना चाहते हैं। परन्तु प्रेममें डूबे हुए हनुमान्‌जीको चरणोंसे उठना सुहाता नहीं। प्रभुका कर-कमल हनुमान्‌जीके सिरपर है। उस स्थितिका स्मरण करके शिवजी प्रेममग्न हो गये ॥ १ ॥

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर ॥
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा ॥२॥

फिर मनको सावधान करके शंकरजी अत्यन्त सुन्दर कथा कहने लगे—हनुमान्‌जीको उठाकर प्रभुने हृदयसे लगाया और हाथ पकड़कर अत्यन्त निकट बैठा लिया ॥ २ ॥

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका ॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना ॥३॥

हे हनुमान्! बताओ तो, रावणके द्वारा सुरक्षित लंका और उसके बड़े बाँके किलेको तुमने किस तरह जलाया? हनुमान्‌जीने प्रभुको प्रसन्न जाना और वे अभिमानरहित वचन बोले—॥ ३ ॥

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई ॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा ॥४॥

बंदरका बस, यही बड़ा पुरुषार्थ है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर चला जाता है। मैंने जो समुद्र लाँघकर सोनेका नगर जलाया और राक्षसगणको मारकर अशोक वनको उजाड़ डाला, ॥ ४ ॥

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ॥५॥

यह सब तो हे श्रीरघुनाथजी! आपहीका प्रताप है। हे नाथ! इसमें मेरी प्रभुता (बड़ाई) कुछ भी नहीं है ॥ ५ ॥

दो०—ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल ॥ ३३॥

हे प्रभु! जिसपर आप प्रसन्न हों, उसके लिये कुछ भी कठिन नहीं है। आपके प्रभावसे रूई [जो स्वयं बहुत जल्दी जल जानेवाली वस्तु है] बड़वानलको निश्चय ही जला सकती है (अर्थात् असम्भव भी सम्भव हो सकता है) ॥ ३३ ॥

चौ०—नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी ॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी ॥१॥

हे नाथ! मुझे अत्यन्त सुख देनेवाली अपनी निश्चल भक्ति कृपा करके दीजिये। हनुमान्‌जीकी अत्यन्त सरल वाणी सुनकर, हे भवानी! तब प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा ॥ १ ॥

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥२॥

हे उमा! जिसने श्रीरामजीका स्वभाव जान लिया, उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुहाती! यह स्वामी-सेवकका संवाद जिसके हृदयमें आ गया, वही श्रीरघुनाथजीके चरणोंकी भक्ति पा गया ॥ २ ॥

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा ॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा ॥३॥

प्रभुके वचन सुनकर वानरगण कहने लगे—कृपालु आनन्दकन्द श्रीरामजीकी जय हो, जय हो, जय हो! तब श्रीरघुनाथजीने कपिराज सुग्रीवको बुलाया और कहा—चलनेकी तैयारी करो ॥ ३ ॥

अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे ॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी ॥४॥

अब विलम्ब किस कारण किया जाय? वानरोंको तुरंत आज्ञा दो। [भगवान्‌की] यह लीला (रावणवधकी तैयारी) देखकर, बहुत-से फूल बरसाकर और हर्षित होकर देवता आकाशसे अपने-अपने लोकको चले ॥ ४ ॥

दो०-कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ ॥३४॥

वानरराज सुग्रीवने शीघ्र ही वानरोंको बुलाया, सेनापतियोंके समूह आ गये। वानर-भालुओंके झुंड अनेक रंगोंके हैं और उनमें अतुलनीय बल है ॥ ३४ ॥

चौ०-प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा ॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना ॥१॥

वे प्रभुके चरणकमलोंमें सिर नवाते हैं। महान् बलवान् रीछ और वानर गरज रहे हैं! श्रीरामजीने वानरोंकी सारी सेना देखी। तब कमलनेत्रोंसे कृपापूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली ॥ १ ॥

राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा ॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना ॥२॥

रामकृपाका बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानो पंखवाले बड़े पर्वत हो गये। तब श्रीरामजीने हर्षित होकर प्रस्थान (कूच) किया। अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए ॥ २ ॥

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती ॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं ॥३॥

जिनकी कीर्ति सब मङ्गलोंसे पूर्ण है, उनके प्रस्थानके समय शकुन होना, यह नीति है (लीलाकी मर्यादा है)। प्रभुका प्रस्थान जानकीजीने भी जान लिया। उनके बायें अंग फड़क-फड़ककर मानो कहे देते थे [कि श्रीरामजी आ रहे हैं] ॥ ३ ॥

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई ॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा ॥४॥

जानकीजीको जो-जो शकुन होते थे, वही-वही रावणके लिये अपशकुन हुए। सेना चली, उसका वर्णन कौन कर सकता है? असंख्य वानर और भालू गर्जना कर रहे हैं ॥ ४ ॥

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥५॥

नख ही जिनके शस्त्र हैं, वे इच्छानुसार (सर्वत्र बेरोक-टोक) चलनेवाले रीछ-वानर पर्वतों और वृक्षोंको धारण किये कोई आकाशमार्गसे और कोई पृथ्वीपर चले जा रहे हैं। वे सिंहके समान गर्जना कर रहे हैं। [उनके चलने और गर्जनेसे] दिशाओंके हाथी विचलित होकर चिग्घाड़ रहे हैं॥५॥

छं०-चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥१॥

दिशाओंके हाथी चिग्घाड़ने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत चञ्चल हो गये (काँपने लगे) और समुद्र खलबला उठे। गन्धर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर, सब-के-सब मनमें हर्षित हुए कि [अब] हमारे दुःख टल गये। अनेकों करोड़ भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं और करोड़ों ही दौड़ रहे हैं। 'प्रबलप्रताप कोसलनाथ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो' ऐसा पुकारते हुए वे उनके गुणसमूहोंको गा रहे हैं॥१॥

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ट कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥२॥

उदार (परम श्रेष्ठ एवं महान्) सर्पराज शेषजी भी सेनाका बोझ नहीं सह सकते, वे बार-बार मोहित हो जाते (घबड़ा जाते) हैं और पुनः पुनः कच्छपकी कठोर पीठको दाँतोंसे पकड़ते हैं। ऐसा करते (अर्थात् बार-बार दाँतोंको गड़ाकर कच्छपकी पीठपर लकीर-सी खींचते हुए) वे कैसे शोभा दे रहे हैं मानो श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर प्रस्थानयात्राको

परम सुहावनी जानकर उसकी अचल पवित्र कथाको सर्पराज शेषजी कच्छपकी पीठपर लिख रहे हों ॥ २ ॥

दो०—एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर ॥ ३५॥

इस प्रकार कृपानिधान श्रीरामजी समुद्रतटपर जा उतरे। अनेकों रीछ-वानर वीर जहाँ-तहाँ फल खाने लगे ॥ ३५ ॥

चौ०—उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका ॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा ॥१॥

वहाँ (लंकामें) जबसे हनुमान्‌जी लंकाको जलाकर गये, तबसे राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने-अपने घरोंमें सब विचार करते हैं कि अब राक्षसकुलकी रक्षा [का कोई उपाय] नहीं है ॥ १ ॥

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई ॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी ॥२॥

जिसके दूतका बल वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं नगरमें आनेपर कौन भलाई है (हमलोगोंकी बड़ी बुरी दशा होगी)! दूतियोंसे नगरनिवासियोंके वचन सुनकर मंदोदरी बहुत ही व्याकुल हो गयी ॥ २ ॥

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी ॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू ॥३॥

वह एकान्तमें हाथ जोड़कर पति (रावण) के चरणों लगी और नीतिरसमें पगी हुई वाणी बोली—हे प्रियतम! श्रीहरिसे विरोध छोड़ दीजिये। मेरे कहनेको अत्यन्त ही हितकर जानकर हृदयमें धारण कीजिये ॥ ३ ॥

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी ॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई ॥४॥

जिनके दूतकी करनीका विचार करते ही (स्मरण आते ही) राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे स्वामी! यदि भला चाहते

हैं, तो अपने मन्त्रीको बुलाकर उसके साथ उनकी स्त्रीको भेज दीजिये ॥४॥

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई ॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें ॥५॥

सीता आपके कुलरूपी कमलोंके वनको दुःख देनेवाली जाड़ेकी रात्रिके समान आयी है। हे नाथ! सुनिये, सीताको दिये (लौटाये) बिना शम्भु और ब्रह्माके किये भी आपका भला नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

दो०—राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक ॥ ३६ ॥

श्रीरामजीके बाण सर्पोंके समूहके समान हैं और राक्षसोंके समूह मेढकके समान। जबतक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते) तबतक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिये ॥ ३६ ॥

चौ०—श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी ॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा ॥१॥

मूर्ख और जगत्प्रसिद्ध अभिमानी रावण कानोंसे उसकी वाणी सुनकर खूब हँसा [और बोला—] स्त्रियोंका स्वभाव सचमुच ही बहुत डरपोक होता है। मङ्गलमें भी भय करती हो! तुम्हारा मन (हृदय) बहुत ही कच्चा (कमजोर) है ॥ १ ॥

जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई ॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा ॥२॥

यदि वानरोंकी सेना आवेगी तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवननिर्वाह करेंगे। लोकपाल भी जिसके डरसे काँपते हैं, उसकी स्त्री डरती हो, यह बड़ी हँसीकी बात है ॥ २ ॥

अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई ॥
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता ॥३॥

रावणने ऐसा कहकर हँसकर उसे हृदयसे लगा लिया और ममता बढ़ाकर (अधिक स्नेह दर्शाकर) वह सभामें चला गया। मन्दोदरी

हृदयमें चिन्ता करने लगी कि पतिपर विधाता प्रतिकूल हो गये ॥ ३ ॥

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई ॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू ॥४॥

ज्यों ही वह सभामें जाकर बैठा, उसने ऐसी खबर पायी कि शत्रुकी सारी सेना समुद्रके उस पार आ गयी है। उसने मन्त्रियोंसे पूछा कि उचित सलाह कहिये [अब क्या करना चाहिये]। तब वे सब हँसे और बोले कि चुप किये रहिये (इसमें सलाहकी कौन-सी बात है ?) ॥ ४ ॥

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं ॥५॥

आपने देवताओं और राक्षसोंको जीत लिया, तब तो कुछ श्रम ही नहीं हुआ। फिर मनुष्य और वानर किस गिनतीमें हैं ? ॥ ५ ॥

दो०—सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥ ३७ ॥

मन्त्री, वैद्य और गुरु—ये तीन यदि [अप्रसन्नताके] भय या [लाभकी] आशासे [हितकी बात न कहकर] प्रिय बोलते हैं (ठकुरसुहाती कहने लगते हैं); तो [क्रमशः] राज्य, शरीर और धर्म—इन तीनका शीघ्र ही नाश हो जाता है ॥ ३७ ॥

चौ०—सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा ॥१॥

रावणके लिये भी वही सहायता (संयोग) आ बनी है। मन्त्री उसे सुना-सुनाकर (मुँहपर) स्तुति करते हैं। [इसी समय] अवसर जानकर विभीषणजी आये। उन्होंने बड़े भाईके चरणोंमें सिर नवाया॥१॥

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता ॥२॥

फिर वे सिर नवाकर अपने आसनपर बैठ गये और आज्ञा पाकर ये वचन बोले—हे कृपालु ! जब आपने मुझसे बात (राय) पूछी ही है, तो हे तात ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपके हितकी बात कहता हूँ—॥२॥

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥३॥

जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकारके सुख चाहता हो, वह हे स्वामी! परस्त्रीके ललाटको चौथके चन्द्रमाकी तरह त्याग दे (अर्थात् जैसे लोग चौथके चन्द्रमाको नहीं देखते, उसी प्रकार परस्त्रीका मुख ही न देखे)॥ ३॥

चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥४॥

चौदहों भुवनोंका एक ही स्वामी हो, वह भी जीवोंसे वैर करके ठहर नहीं सकता (नष्ट हो जाता है)। जो मनुष्य गुणोंका समुद्र और चतुर हो, उसे चाहे थोड़ा भी लोभ क्यों न हो, तो भी कोई भला नहीं कहता॥ ४॥

दो०—काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥३८॥

हे नाथ! काम, क्रोध, मद और लोभ—ये सब नरकके रास्ते हैं। इन सबको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीको भजिये, जिन्हें संत (सत्पुरुष) भजते हैं॥ ३८॥

चौ०—तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥१॥

हे तात! राम मनुष्योंके ही राजा नहीं हैं। वे समस्त लोकोंके स्वामी और कालके भी काल हैं। वे [सम्पूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञानके भण्डार] भगवान् हैं; वे निरामय (विकाररहित), अजन्मा, व्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं॥ १॥

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥२॥

उन कृपाके समुद्र भगवान्ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओंका हित करनेके लिये ही मनुष्यशरीर धारण किया है। हे भाई! सुनिये, वे

सेवकोंको आनन्द देनेवाले, दुष्टोंके समूहका नाश करनेवाले और वेद तथा धर्मकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ २ ॥

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥३॥

वैर त्याग कर उन्हें मस्तक नवाइये। वे श्रीरघुनाथजी शरणागतका दुःख नाश करनेवाले हैं। हे नाथ! उन प्रभु (सर्वेश्वर) को जानकीजी दे दीजिये और बिना ही कारण स्नेह करनेवाले श्रीरामजीको भजिये ॥३॥

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥४॥

जिसे सम्पूर्ण जगत्से द्रोह करनेका पाप लगा है, शरण जानेपर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते। जिनका नाम तीनों तापोंका नाश करनेवाला है, वे ही प्रभु (भगवान्) मनुष्यरूपमें प्रकट हुए हैं। हे रावण! हृदयमें यह समझ लीजिये ॥ ४ ॥

दो०—बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ॥ ३९ (क)॥

हे दशशीश! मैं बार-बार आपके चरणों लगता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मदको त्याग कर आप कोसलपति श्रीरामजीका भजन कीजिये ॥ ३९ (क) ॥

मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात ॥ ३९ (ख)॥

मुनि पुलस्त्यजीने अपने शिष्यके हाथ यह बात कहला भेजी है। हे तात! सुन्दर अवसर पाकर मैंने तुरंत ही वह बात प्रभु (आप) से कह दी ॥ ३९ (ख) ॥

चौ०—माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥१॥

माल्यवान् नामका एक बहुत ही बुद्धिमान् मन्त्री था। उसने उन

(विभीषण) के वचन सुनकर बहुत सुख माना [और कहा—] हे तात ! आपके छोटे भाई नीतिविभूषण (नीतिको भूषणरूपमें धारण करनेवाले अर्थात् नीतिमान्) हैं । विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदयमें धारण कर लीजिये ॥ १ ॥

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी ॥२॥

[रावणने कहा—] ये दोनों मूर्ख शत्रुकी महिमा बखान रहे हैं। यहाँ कोई है ? इन्हें दूर करो न ! तब माल्यवान् तो घर लौट गया और विभीषणजी हाथ जोड़कर फिर कहने लगे—॥ २ ॥

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥३॥

हे नाथ ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदयमें रहती हैं, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकारकी सम्पदाएँ (सुखकी स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाममें विपत्ति (दुःख) रहती है ॥ ३ ॥

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥४॥

आपके हृदयमें उलटी बुद्धि आ बसी है। इसीसे आप हितको अहित और शत्रुको मित्र मान रहे हैं। जो राक्षसकुलके लिये कालरात्रि [के समान] हैं, उन सीतापर आपकी बड़ी प्रीति है ॥ ४ ॥

दो०—तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ॥४०॥

हे तात ! मैं चरण पकड़कर आपसे भीख माँगता हूँ (विनती करता हूँ) कि आप मेरा दुलार रखिये (मुझ बालकके आग्रहको स्नेहपूर्वक स्वीकार कीजिये) । श्रीरामजीको सीताजी दे दीजिये, जिसमें आपका अहित न हो ॥ ४० ॥

चौ०–बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥१॥

विभीषणने पण्डितों, पुराणों और वेदोंद्वारा सम्मत (अनुमोदित) वाणीसे नीति बखानकर कही। पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट! अब मृत्यु तेरे निकट आ गयी है!॥१॥

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं॥२॥

अरे मूर्ख! तू जीता तो है सदा मेरा जिलाया हुआ (अर्थात् मेरे ही अन्नसे पल रहा है), पर हे मूढ़! पक्ष तुझे शत्रुका ही अच्छा लगता है! अरे दुष्ट! बता न, जगत्‌में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओंके बलसे न जीता हो?॥२॥

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥३॥

मेरे नगरमें रहकर प्रेम करता है तपस्वियोंपर! मूर्ख! उन्हींसे जा मिल और उन्हींको नीति बता! ऐसा कहकर रावणने उन्हें लात मारी। परन्तु छोटे भाई विभीषणने [मारनेपर भी] बार-बार उसके चरण ही पकड़े॥३॥

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥४॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! संतकी यही बड़ाई (महिमा) है कि वे बुराई करनेपर भी [बुराई करनेवालेकी] भलाई ही करते हैं। [विभीषणजीने कहा—] आप मेरे पिताके समान हैं, मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया; परन्तु हे नाथ! आपका भला श्रीरामजीको भजनेमें ही है॥४॥

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥५॥

[इतना कहकर] विभीषण अपने मन्त्रियोंको साथ लेकर आकाश-मार्गमें गये और सबको सुनाकर वे ऐसा कहने लगे—॥५॥

दो०—रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥४१॥

श्रीरामजी सत्यसंकल्प एवं [सर्वसमर्थ] प्रभु हैं और [हे रावण!] तुम्हारी सभा कालके वश है। अतः मैं अब श्रीरघुवीरकी शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना॥ ४१॥

चौ०—अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥१॥

ऐसा कहकर विभीषणजी ज्यों ही चले, त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गये (उनकी मृत्यु निश्चित हो गयी)। [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! साधुका अपमान तुरंत ही सम्पूर्ण कल्याणकी हानि (नाश) कर देता है॥ १॥

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥२॥

रावणने जिस क्षण विभीषणको त्यागा उसी क्षण वह अभागा वैभव (ऐश्वर्य) से हीन हो गया। विभीषणजी हर्षित होकर मनमें अनेकों मनोरथ करते हुए श्रीरघुनाथजीके पास चले॥ २॥

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी॥३॥

[वे सोचते जाते थे—] मैं जाकर भगवान्‌के कोमल और लाल वर्णके सुन्दर चरणकमलोंके दर्शन करूँगा, जो सेवकोंको सुख देनेवाले हैं, जिन चरणोंका स्पर्श पाकर ऋषिपत्नी अहल्या तर गयीं और जो दण्डकवन-को पवित्र करनेवाले हैं॥ ३॥

जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥४॥

जिन चरणोंको जानकीजीने हृदयमें धारण कर रक्खा है, जो कपटमृगके साथ पृथ्वीपर [उसे पकड़नेको] दौड़े थे और जो चरणकमल

साक्षात् शिवजीके हृदयरूपी सरोवरमें विराजते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हींको आज मैं देखूँगा ! ॥ ४ ॥

दो०—जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ ॥४२॥

जिन चरणोंकी पादुकाओंमें भरतजीने अपना मन लगा रक्खा है, अहा ! आज मैं उन्हीं चरणोंको अभी जाकर इन नेत्रोंसे देखूँगा ! ॥४२॥

चौ०—एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा ॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा ॥१॥

इस प्रकार प्रेमसहित विचार करते हुए वे शीघ्र ही समुद्रके इस पार (जिधर श्रीरामचन्द्रजीकी सेना थी) आ गये। वानरोंने विभीषणको आते देखा तो उन्होंने जाना कि शत्रुका कोई खास दूत है ॥ १ ॥

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई ॥२॥

उन्हें [पहरेपर] ठहराकर वे सुग्रीवके पास आये और उनको सब समाचार कह सुनाये। सुग्रीवने [श्रीरामजीके पास जाकर] कहा—हे रघुनाथजी ! सुनिये, रावणका भाई [आपसे] मिलने आया है ॥ २ ॥

कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा ॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया ॥३॥

प्रभु श्रीरामजीने कहा— हे मित्र ! तुम क्या समझते हो (तुम्हारी क्या राय है) ? वानरराज सुग्रीवने कहा—हे महाराज ! सुनिये, राक्षसोंकी माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलनेवाला (छली) न जाने किस कारण आया है ॥ ३ ॥

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा ॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी ॥४॥

[जान पड़ता है] यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है। इसलिये मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रक्खा जाय। [श्रीरामजीने

कहा—] हे मित्र ! तुमने नीति तो अच्छी विचारी। परन्तु मेरा प्रण तो है शरणागतके भयको हर लेना ! ॥ ४ ॥

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना ॥५॥

प्रभुके वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए [और मन-ही-मन कहने लगे कि] भगवान् कैसे शरणागतवत्सल (शरणमें आये हुएपर पिताकी भाँति प्रेम करनेवाले) हैं ॥ ५ ॥

दो०—सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ॥४३॥

[श्रीरामजी फिर बोले—] जो मनुष्य अपने अहितका अनुमान करके शरणमें आये हुएका त्याग कर देते हैं, वे पामर (क्षुद्र) हैं, पापमय हैं; उन्हें देखनेमें भी हानि है (पाप लगता है) ॥ ४३ ॥

चौ०—कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥१॥

जिसे करोड़ों ब्राह्मणोंकी हत्या लगी हो, शरणमें आनेपर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई ॥२॥

पापीका यह सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सुहाता। यदि वह (रावणका भाई) निश्चय ही दुष्ट हृदयका होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था ? ॥ २ ॥

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥३॥

जो मनुष्य निर्मल मनका होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते। यदि उसे रावणने भेद लेनेको भेजा है, तब भी हे सुग्रीव ! अपनेको कुछ भी भय या हानि नहीं है ॥ ३ ॥

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥४॥

क्योंकि हे सखे ! जगत्‌में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण क्षणभरमें उन सबको मार सकते हैं। और यदि वह भयभीत होकर मेरे शरण आया है तो मैं उसे प्राणोंकी तरह रक्खूँगा ॥ ४ ॥

दो०—उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥४४॥

कृपाके धाम श्रीरामजीने हँसकर कहा—दोनों ही स्थितियोंमें उसे ले आओ। तब अंगद और हनुमान्‌सहित सुग्रीवजी 'कृपालु श्रीरामकी जय हो' कहते हुए चले ॥ ४४ ॥

चौ०—सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥१॥

विभीषणजीको आदरसहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले जहाँ करुणाकी खान श्रीरघुनाथजी थे। नेत्रोंको आनन्दका दान देनेवाले (अत्यन्त सुखद) दोनों भाइयोंको विभीषणजीने दूरहीसे देखा ॥ १ ॥

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन॥२॥

फिर शोभाके धाम श्रीरामजीको देखकर वे पलक [मारना] रोककर ठिठककर (स्तब्ध होकर) एकटक देखते ही रह गये। भगवान्‌की विशाल भुजाएँ हैं, लाल कमलके समान नेत्र हैं और शरणागतके भयका नाश करनेवाला साँवला शरीर है ॥ २ ॥

सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥३॥

सिंहके-से कंधे हैं, विशाल वक्षःस्थल (चौड़ी छाती) अत्यन्त शोभा दे रहा है। असंख्य कामदेवोंके मनको मोहित करनेवाला मुख है। भगवान्‌के स्वरूपको देखकर विभीषणजीके नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया

और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया। फिर मनमें धीरज धरकर उन्होंने कोमल वचन कहे—॥ ३ ॥

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता ॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥४॥

हे नाथ ! मैं दशमुख रावणका भाई हूँ। हे देवताओंके रक्षक ! मेरा जन्म राक्षसकुलमें हुआ है। मेरा तामसी शरीर है, स्वभावसे ही मुझे पाप प्रिय हैं, जैसे उल्लूको अन्धकारपर सहज स्नेह होता है ॥ ४ ॥

दो०—श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ॥ ४५ ॥

मैं कानोंसे आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव (जन्म-मरण) के भयका नाश करनेवाले हैं। हे दुखियोंके दुःख दूर करनेवाले और शरणागतको सुख देनेवाले श्रीरघुवीर ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ४५

चौ०—अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ॥१॥

प्रभुने उन्हें ऐसा कहकर दण्डवत् करते देखा तो वे अत्यन्त हर्षित होकर तुरंत उठे। विभीषणजीके दीन वचन सुननेपर प्रभुके मनको बहुत ही भाये। उन्होंने अपनी विशाल भुजाओंसे पकड़कर उनको हृदयसे लगा लिया ॥ १ ॥

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भयहारी ॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥२॥

छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर श्रीरामजी भक्तोंके भयको हरनेवाले वचन बोले—हे लंकेश ! परिवारसहित अपनी कुशल कहो। तुम्हारा निवास बुरी जगहपर है ॥ २ ॥

खल मंडलीं बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती ॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती ॥३॥

दिन-रात दुष्टोंकी मण्डलीमें बसते हो। [ऐसी दशामें] हे सखे !

तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है? मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ । तुम अत्यन्त नीतिनिपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती ॥ ३ ॥

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता ॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया ॥४॥

हे तात ! नरकमें रहना वरं अच्छा है, परन्तु विधाता दुष्टका सङ्ग [कभी] न दे । [विभीषणजीने कहा—] हे रघुनाथजी ! अब आपके चरणोंका दर्शन कर कुशलसे हूँ, जो आपने अपना सेवक जानकर मुझपर दया की है ॥ ४ ॥

दो०—तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम ॥ ४६ ॥

तबतक जीवकी कुशल नहीं और न स्वप्नमें भी उसके मनको शान्ति है, जबतक वह शोकके घर काम (विषय-कामना) को छोड़कर श्रीरामजी-को नहीं भजता ॥ ४६ ॥

चौ०-तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा ॥१॥

लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभीतक हृदयमें बसते हैं, जबतक कि धनुष-बाण और कमरमें तरकस धारण किये हुए श्रीरघुनाथजी हृदयमें नहीं बसते ॥ १ ॥

ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं ॥२॥

ममता पूर्ण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेषरूपी उल्लुओंको सुख देने-वाली है । वह (ममतारूपी रात्रि) तभीतक जीवके मनमें बसती है, जबतक प्रभु (आप) का प्रतापरूपी सूर्य उदय नहीं होता ॥ २ ॥

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे ॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला ॥३॥

हे श्रीरामजी ! आपके चरणारविन्दके दर्शन कर अब मैं कुशलसे

हूँ; मेरे भारी भय मिट गये। हे कृपालु! आप जिसपर अनुकूल होते हैं, उसे तीनों प्रकारके भवशूल (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) नहीं व्यापते ॥ ३ ॥

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा ॥४॥

मैं अत्यन्त नीच स्वभावका राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया। जिनका रूप मुनियोंके भी ध्यानमें नहीं आता, उन प्रभुने स्वयं हर्षित होकर मुझे हृदयसे लगा लिया ॥ ४ ॥

दो०—अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज ॥ ४७ ॥

हे कृपा और सुखके पुञ्ज श्रीरामजी! मेरा अत्यन्त असीम सौभाग्य है, जो मैंने ब्रह्मा और शिवजीके द्वारा सेवित युगल चरणकमलोंको अपने नेत्रोंसे देखा ॥ ४७ ॥

चौ०—सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही ॥१॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे सखा! सुनो, मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे काकभुशुण्डि, शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं। कोई मनुष्य [सम्पूर्ण] जड-चेतन जगत्‌का द्रोही हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण तककर आ जाय, ॥ १ ॥

तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥२॥

और मद, मोह तथा नाना प्रकारके छल-कपट त्याग दे तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधुके समान कर देता हूँ। माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार ॥ २ ॥

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं ॥३॥

इन सबके ममत्वरूपी तागोंको बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है (सारे सांसारिक सम्बन्धोंका केन्द्र मुझे बना लेता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मनमें हर्ष, शोक और भय नहीं है, ॥ ३ ॥

अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें ॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें ॥४॥

ऐसा सज्जन मेरे हृदयमें कैसे बसता है, जैसे लोभीके हृदयमें धन बसा करता है ! तुम-सरीखे संत ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसीके निहोरेसे (कृतज्ञतावश) देह धारण नहीं करता ॥ ४ ॥

दो०–सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम ॥ ४८ ॥

जो सगुण (साकार) भगवान्‌के उपासक हैं, दूसरेके हितमें लगे रहते हैं, नीति और नियमोंमें दृढ़ हैं और जिन्हें ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणोंके समान हैं ॥ ४८ ॥

चौ०–सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें ॥
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा ॥१॥

हे लंकापति ! सुनो, तुम्हारे अंदर उपर्युक्त सब गुण हैं। इससे तुम मुझे अत्यन्त ही प्रिय हो। श्रीरामजीके वचन सुनकर सब वानरोंके समूह कहने लगे—कृपाके समूह श्रीरामजीकी जय हो ! ॥ १ ॥

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी ॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा ॥२॥

प्रभुकी वाणी सुनते हैं और उसे कानोंके लिये अमृत जानकर विभीषणजी अघाते नहीं हैं। वे बार-बार श्रीरामजीके चरणकमलोंको पकड़ते हैं। अपार प्रेम है, हृदयमें समाता नहीं है ॥ २ ॥

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी ॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ॥३॥

[विभीषणजीने कहा—] हे देव ! हे चराचर जगत्के स्वामी ! हे शरणागतके रक्षक ! हे सबके हृदयके भीतरकी जाननेवाले ! सुनिये, मेरे हृदयमें पहले कुछ वासना थी । वह प्रभुके चरणोंकी प्रीतिरूपी नदीमें बह गयी ॥ ३ ॥

अब कृपाल निज भगति पावनी । देहु सदा सिव मन भावनी ॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा । मागा तुरत सिंधु कर नीरा ॥४॥

अब तो हे कृपालु ! शिवजीके मनको सदैव प्रिय लगनेवाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिये । 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रणधीर प्रभु श्रीरामजीने तुरंत ही समुद्रका जल माँगा ॥ ४ ॥

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरसु अमोघ जग माहीं ॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन बृष्टि नभ भई अपारा ॥५॥

[और कहा—] हे सखा ! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत्में मेरा दर्शन अमोघ है (वह निष्फल नहीं जाता) । ऐसा कहकर श्रीरामजीने उनको राजतिलक कर दिया । आकाशसे पुष्पोंकी अपार वृष्टि हुई ॥ ५ ॥

दो०—रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड ।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड ॥ ४९(क) ॥

श्रीरामजीने रावणके क्रोधरूपी अग्निमें, जो अपनी (विभीषणकी) श्वास (वचन) रूपी पवनसे प्रचण्ड हो रही थी, जलते हुए विभीषणको बचा लिया और उसे अखण्ड राज्य दिया ॥ ४९ (क) ॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥ ४९(ख) ॥

शिवजीने जो सम्पत्ति रावणको दसों सिरोंकी बलि देनेपर दी थी, वही सम्पत्ति श्रीरघुनाथजीने विभीषणको बहुत सकुचते हुए दी ॥ ४९ (ख) ॥

चौ०—अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना । ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना ॥
निज जन जानि ताहि अपनावा । प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा ॥१॥

ऐसे परम कृपालु प्रभुको छोड़कर जो मनुष्य दूसरेको भजते हैं, वे बिना सींग-पूँछके पशु हैं। अपना सेवक जानकर विभीषणको श्रीरामजीने अपना लिया। प्रभुका स्वभाव वानरकुलके मनको [बहुत] भाया ॥ १ ॥

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी ॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक ॥२॥

फिर सब कुछ जाननेवाले, सबके हृदयमें बसनेवाले, सर्वरूप (सब रूपोंमें प्रकट), सबसे रहित, उदासीन, कारणसे (भक्तोंपर कृपा करनेके लिये) मनुष्य बने हुए तथा राक्षसोंके कुलका नाश करनेवाले श्रीरामजी नीतिकी रक्षा करनेवाले वचन बोले—॥ २ ॥

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा ॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥३॥

हे वीर वानरराज सुग्रीव और लंकापति विभीषण! सुनो, इस गहरे समुद्रको किस प्रकार पार किया जाय? अनेक जातिके मगर, साँप और मछलियोंसे भरा हुआ यह अत्यन्त अथाह समुद्र पार करनेमें सब प्रकारसे कठिन है ॥ ३ ॥

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक ॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई ॥४॥

विभीषणजीने कहा—हे रघुनाथजी! सुनिये, यद्यपि आपका एक बाण ही करोड़ों समुद्रोंको सोखनेवाला है (सोख सकता है), तथापि नीति ऐसी कही गयी है (उचित यह होगा) कि [पहले] जाकर समुद्रसे प्रार्थना की जाय ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि ॥ ५० ॥

हे प्रभु! समुद्र आपके कुलमें बड़े (पूर्वज) हैं, वे विचारकर उपाय बतला देंगे। तब रीछ और वानरोंकी सारी सेना बिना ही परिश्रमके समुद्रके पार उतर जायगी ॥ ५० ॥

चौ०—सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई॥
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥१॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे सखा ! तुमने अच्छा उपाय बताया। यही किया जाय, यदि दैव सहायक हों। यह सलाह लक्ष्मणजीके मनको अच्छी नहीं लगी। श्रीरामजीके वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया॥ १ ॥

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥२॥

[लक्ष्मणजीने कहा—] हे नाथ ! दैवका कौन भरोसा ! मनमें क्रोध कीजिये (ले आइये) और समुद्रको सुखा डालिये। यह दैव तो कायरके मनका एक आधार (तसल्ली देनेका उपाय) है ! आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं॥ २ ॥

सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥३॥

यह सुनकर श्रीरघुवीर हँसकर बोले—ऐसे ही करेंगे, मनमें धीरज रक्खो। ऐसा कहकर छोटे भाईको समझाकर प्रभु श्रीरघुनाथजी समुद्रके समीप गये॥ ३ ॥

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए॥४॥

उन्होंने पहले सिर नवाकर प्रणाम किया। फिर किनारेपर कुश बिछाकर बैठ गये। इधर ज्यों ही विभीषणजी प्रभुके पास आये थे, त्यों ही रावणने उनके पीछे दूत भेजे थे॥ ४ ॥

दो०—सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह॥५१॥

कपटसे वानरका शरीर धारण कर उन्होंने सब लीलाएँ देखीं। वे

अपने हृदयमें प्रभुके गुणोंकी और शरणागतपर उनके स्नेहकी सराहना करने लगे ॥ ५१ ॥

चौ०—प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥१॥

फिर वे प्रकटरूपमें भी अत्यन्त प्रेमके साथ श्रीरामजीके स्वभावकी बड़ाई करने लगे, उन्हें दुराव (कपट वेष) भूल गया! तब वानरोंने जाना कि ये शत्रुके दूत हैं और वे उन सबको बाँधकर सुग्रीवके पास ले आये ॥ १ ॥

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहु पास फिराए॥२॥

सुग्रीवने कहा—सब वानरो! सुनो, राक्षसोंके अङ्ग-भंग करके भेज दो। सुग्रीवके वचन सुनकर वानर दौड़े। दूतोंको बाँधकर उन्होंने सेनाके चारों ओर घुमाया ॥ २ ॥

बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥३॥

वानर उन्हें बहुत तरहसे मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरोंने उन्हें नहीं छोड़ा। [तब दूतोंने पुकारकर कहा—] जो हमारे नाक-कान काटेगा, उसे कोशलाधीश श्रीरामजीकी सौगंध है ॥ ३ ॥

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥४॥

यह सुनकर लक्ष्मणजीने सबको निकट बुलाया। उन्हें बड़ी दया लगी, इससे हँसकर उन्होंने राक्षसोंको तुरंत ही छुड़ा दिया। [और उनसे कहा—] रावणके हाथमें यह चिट्ठी देना [और कहना—] हे कुलघातक! लक्ष्मणके शब्दों (सँदेसे) को बाँचो ॥ ४ ॥

दो०—कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥५२॥

फिर उस मूर्खसे जबानी यह मेरा उदार (कृपासे भरा हुआ) सन्देश कहना कि सीताजीको देकर उनसे (श्रीरामजीसे) मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया [समझो] ॥ ५२ ॥

चौ०—तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥१॥

लक्ष्मणजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर, श्रीरामजीके गुणोंकी कथा वर्णन करते हुए दूत तुरंत ही चल दिये। श्रीरामजीका यश कहते हुए वे लङ्कामें आये और उन्होंने रावणके चरणोंमें सिर नवाये ॥ १ ॥

बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥२॥

दशमुख रावणने हँसकर बात पूछी—अरे शुक! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता? फिर उस विभीषणका समाचार सुना, मृत्यु जिसके अत्यन्त निकट आ गयी है ॥ २ ॥

करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥३॥

मूर्खने राज्य करते हुए लङ्काको त्याग दिया। अभागा अब जौका कीड़ा (घुन) बनेगा (जौके साथ जैसे घुन भी पिस जाता है, वैसे ही नर-वानरोंके साथ वह भी मारा जायगा)। फिर भालु और वानरोंकी सेनाका हाल कह, जो कठिन कालकी प्रेरणासे यहाँ चली आयी है ॥ ३ ॥

जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी॥४॥

और जिनके जीवनका रक्षक कोमल चित्तवाला बेचारा समुद्र बन गया है (अर्थात् उनके और राक्षसोंके बीचमें यदि समुद्र न होता तो अबतक राक्षस उन्हें मारकर खा गये होते)। फिर उन तपस्वियोंकी बात बता, जिनके हृदयमें मेरा बड़ा डर है ॥ ४ ॥

दो०—की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर ॥ ५३॥

उनसे तेरी भेंट हुई या वे कानोंसे मेरा सुयश सुनकर ही लौट गये? शत्रुसेनाका तेज और बल बताता क्यों नहीं? तेरा चित्त बहुत ही चकित (भौंचक्का-सा) हो रहा है ॥ ५३ ॥

चौ०—नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा ॥१॥

[दूतने कहा—] हे नाथ! आपने जैसे कृपा करके पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिये (मेरी बातपर विश्वास कीजिये)। जब आपका छोटा भाई श्रीरामजीसे जाकर मिला, तब उसके पहुँचते ही श्रीरामजीने उसको राजतिलक कर दिया ॥ १ ॥

रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे ॥२॥

हम रावणके दूत हैं, यह कानोंसे सुनकर वानरोंने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिये, यहाँतक कि वे हमारे नाक-कान काटने लगे। श्रीरामजीकी शपथ दिलानेपर कहीं उन्होंने हमको छोड़ा ॥ २ ॥

पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी ॥३॥

हे नाथ! आपने श्रीरामजीकी सेना पूछी सो वह तो सौ करोड़ मुखोंसे भी वर्णन नहीं की जा सकती। अनेकों रंगोंके भालु और वानरोंकी सेना है, जो भयङ्कर मुखवाले, विशाल शरीरवाले और भयानक हैं ॥ ३ ॥

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला ॥४॥

जिसने नगरको जलाया और आपके पुत्र अक्षयकुमारको मारा, उसका बल तो सब वानरोंमें थोड़ा है। असंख्य नामोंवाले बड़े ही कठोर

और भयङ्कर योद्धा हैं। उनमें असंख्य हाथियोंका बल है और वे बड़े ही विशाल हैं ॥ ४ ॥

दो०—द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि ॥ ५४ ॥

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान्—ये सभी बलकी राशि हैं ॥ ५४ ॥

चौ०—ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहि गनहीं ॥१॥

ये सब वानर बलमें सुग्रीवके समान हैं और इनके-जैसे [एक-दो नहीं] करोड़ों हैं; उन बहुत-सोंको गिन ही कौन सकता है ? श्रीरामजीकी कृपासे उनमें अतुलनीय बल है। वे तीनों लोकोंको तृणके समान [तुच्छ] समझते हैं ॥ १ ॥

अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर ॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं ॥२॥

हे दशग्रीव ! मैंने कानोंसे ऐसा सुना है कि अठारह पद्म तो अकेले वानरोंके सेनापति हैं ! हे नाथ ! उस सेनामें ऐसा कोई वानर नहीं है जो आपको रणमें न जीत सके ॥ २ ॥

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा ॥
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला ॥३॥

सब-के-सब अत्यन्त क्रोधसे हाथ मीजते हैं। पर श्रीरघुनाथजी उन्हें आज्ञा नहीं देते। हम मछलियों और साँपोंसहित समुद्रको सोख लेंगे। नहीं तो, बड़े-बड़े पर्वतोंसे उसे भरकर पूर (पाट) देंगे, ॥ ३ ॥

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा ॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका ॥४॥

और रावणको मसलकर धूलमें मिला देंगे। सब वानर ऐसे ही वचन

कह रहे हैं। सब सहज ही निडर हैं; इस प्रकार गरजते और डपटते हैं मानो लङ्काको निगल ही जाना चाहते हैं ॥ ४ ॥

दो०—सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम ॥ ५५ ॥

सब वानर-भालू सहज ही शूरवीर हैं, फिर उनके सिरपर प्रभु (सर्वेश्वर) श्रीरामजी हैं। हे रावण! वे संग्राममें करोड़ों कालोंको जीत सकते हैं ॥ ५५ ॥

चौ०—राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई ॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके तेज (सामर्थ्य), बल और बुद्धिकी अधिकताको लाखों शेष भी नहीं गा सकते। वे एक ही बाणसे सैकड़ों समुद्रोंको सोख सकते हैं, परन्तु नीतिनिपुण श्रीरामजीने [नीतिकी रक्षाके लिये] आपके भाईसे उपाय पूछा ॥ १ ॥

तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं ॥
सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा ॥ २ ॥

उनके (आपके भाईके) वचन सुनकर वे (श्रीरामजी) समुद्रसे राह माँग रहे हैं, उनके मनमें कृपा भरी है [इसलिये वे उसे सोखते नहीं]। दूतके ये वचन सुनते ही रावण खूब हँसा [और बोला—] जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरोंको सहायक बनाया है! ॥ २ ॥

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई ॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई ॥ ३ ॥

स्वाभाविक ही डरपोक विभीषणके वचनको प्रमाण करके उन्होंने समुद्रसे मचलना (बालहठ) ठाना है! अरे मूर्ख! झूठी बड़ाई क्या करता है! बस, मैंने शत्रु (राम) के बल और बुद्धिकी थाह पा ली ॥ ३ ॥

सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें ॥
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी ॥ ४ ॥

जिसके विभीषण-जैसा डरपोक मन्त्री हो, उसे जगत्‌में विजय और विभूति (ऐश्वर्य) कहाँ ! दुष्ट रावणके वचन सुनकर दूतको क्रोध बढ़ आया ! उसने मौका समझकर पत्रिका निकाली ॥ ४ ॥

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती ॥
बिहसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन ॥५॥

[और कहा—] श्रीरामजीके छोटे भाई लक्ष्मणने यह पत्रिका दी है। हे नाथ ! इसे बँचवाकर छाती ठंडी कीजिये। रावणने हँसकर उसे बायें हाथसे लिया और मन्त्रीको बुलवाकर वह मूर्ख उसे बँचाने लगा ॥५॥

दो०—बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस ॥५६(क)॥

[पत्रिकामें लिखा था—] अरे मूर्ख ! केवल बातोंसे ही मनको रिझाकर अपने कुलको नष्ट-भ्रष्ट न कर ! श्रीरामजीसे विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेशकी शरण जानेपर भी नहीं बचेगा ॥ ५६ (क) ॥

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग ॥५६(ख)॥

या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषणकी भाँति प्रभुके चरण-कमलोंका भ्रमर बन जा। अथवा, रे दुष्ट ! श्रीरामजीके बाणरूपी अग्निमें परिवारसहित पतिंगा हो जा (दोनोंमेंसे जो अच्छा लगे सो कर) ॥ ५६ (ख) ॥

चौ०—सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई ॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा ॥१॥

पत्रिका सुनते ही रावण मनमें भयभीत हो गया, परन्तु मुखसे (ऊपरसे) मुसकराता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा—जैसे कोई पृथ्वीपर पड़ा हुआ हाथसे आकाशको पकड़नेकी चेष्टा करता हो, वैसे ही यह छोटा तपस्वी (लक्ष्मण) वाग्विलास करता है (डींग हाँकता है) ॥१॥

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥२॥

शुक (दूत) ने कहा—हे नाथ! अभिमानी स्वभावको छोड़कर [इस पत्रमें लिखी] सब बातोंको सत्य समझिये। क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिये। हे नाथ! श्रीरामजीसे वैर त्याग दीजिये॥२॥

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥३॥

यद्यपि श्रीरघुवीर समस्त लोकोंके स्वामी हैं, पर उनका स्वभाव अत्यन्त ही कोमल है। मिलते ही प्रभु आपपर कृपा करेंगे और आपका एक भी अपराध वे हृदयमें नहीं रक्खेंगे॥३॥

जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥४॥

जानकीजी श्रीरघुनाथजीको दे दीजिये। हे प्रभु! इतना कहना मेरा कीजिये। जब उस (दूत) ने जानकीजीको देनेके लिये कहा, तब दुष्ट रावणने उसको लात मारी॥४॥

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई॥५॥

वह भी [विभीषणकी भाँति] चरणोंमें सिर नवाकर वहीं चला जहाँ कृपासागर श्रीरघुनाथजी थे। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनायी और श्रीरामजीकी कृपासे अपनी गति (मुनिका स्वरूप) पायी॥५॥

रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥६॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! वह ज्ञानी मुनि था, अगस्त्य ऋषिके शापसे राक्षस हो गया था। बार-बार श्रीरामजीके चरणोंकी वन्दना करके वह मुनि अपने आश्रमको चला गया॥६॥

दो०—बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति ।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ॥ ५७ ॥

इधर तीन दिन बीत गये, किन्तु जड समुद्र विनय नहीं मानता । तब श्रीरामजी क्रोधसहित बोले—बिना भयके प्रीति नहीं होती ! ॥५७॥

चौ०—लछिमन बान सरासन आनू । सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू ॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुंदर नीती ॥१॥

हे लक्ष्मण ! धनुष-बाण लाओ, मैं अग्निबाणसे समुद्रको सोख डालूँ । मूर्खसे विनय, कुटिलके साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजूससे सुन्दर नीति (उदारताका उपदेश), ॥ १ ॥

ममता रत सन ग्यान कहानी । अति लोभी सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा । ऊसर बीज बएँ फल जथा ॥२॥

ममतामें फँसे हुए मनुष्यसे ज्ञानकी कथा, अत्यन्त लोभीसे वैराग्यका वर्णन, क्रोधीसे शम (शान्ति) की बात और कामीसे भगवान्‌की कथा, इनका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसरमें बीज बोनेसे होता है (अर्थात् ऊसरमें बीज बोनेकी भाँति यह सब व्यर्थ जाता है) ॥ २ ॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा । यह मत लछिमन के मन भावा ॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला । उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ॥३॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने धनुष चढ़ाया । यह मत लक्ष्मणजीके मनको बहुत अच्छा लगा । प्रभुने भयानक [अग्नि] बाण संधान किया, जिससे समुद्रके हृदयके अंदर अग्निकी ज्वाला उठी ॥ ३ ॥

मकर उरग झष गन अकुलाने । जरत जंतु जलनिधि जब जाने ॥
कनक थार भरि मनि गन नाना । बिप्र रूप आयउ तजि माना ॥४॥

मगर, साँप तथा मछलियोंके समूह व्याकुल हो गये । जब समुद्रने जीवोंको जलते जाना, तब सोनेके थालमें अनेक मणियों (रत्नों) को भरकर अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मणके रूपमें आया ॥ ४ ॥

दो०–काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच ॥ ५८॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! सुनिये, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटनेपर ही फलता है। नीच विनयसे नहीं मानता, वह डाँटनेपर ही झुकता है (रास्तेपर आता है) ॥ ५८॥

चौ०–सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥१॥

समुद्रने भयभीत होकर प्रभुके चरण पकड़कर कहा—हे नाथ! मेरे सब अवगुण (दोष) क्षमा कीजिये। हे नाथ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन सबकी करनी स्वभावसे ही जड है ॥ १ ॥

तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई ॥२॥

आपकी प्रेरणासे मायाने इन्हें सृष्टिके लिये उत्पन्न किया है, सब ग्रन्थोंने यही गाया है। जिसके लिये स्वामीकी जैसी आज्ञा है, वह उसी प्रकारसे रहनेमें सुख पाता है ॥ २ ॥

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही ॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥३॥

प्रभुने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा (दण्ड) दी। किन्तु मर्यादा (जीवोंका स्वभाव) भी आपकी ही बनायी हुई है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री—ये सब दण्डके अधिकारी हैं ॥ ३ ॥

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई ॥४॥

प्रभुके प्रतापसे मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जायगी, इसमें मेरी बड़ाई नहीं है (मेरी मर्यादा नहीं रहेगी)। तथापि प्रभुकी आज्ञा अपेल है (अर्थात् आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं हो सकता) ऐसा वेद गाते हैं। अब आपको जो अच्छा लगे, मैं तुरंत वही करूँ ॥ ४॥

दो०—सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ ॥ ५९ ॥

समुद्रके अत्यन्त विनीत वचन सुनकर कृपालु श्रीरामजीने मुसकराकर कहा—हे तात ! जिस प्रकार वानरोंकी सेना पार उतर जाय, वह उपाय बताओ ॥ ५९ ॥

चौ०—नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई ॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥१॥

[समुद्रने कहा—] हे नाथ ! नील और नल दो वानर भाई हैं। उन्होंने लड़कपनमें ऋषिसे आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श कर लेनेसे ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रतापसे समुद्रपर तैर जायँगे ॥ १ ॥

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई ॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥२॥

मैं भी प्रभुकी प्रभुताको हृदयमें धारण कर अपने बलके अनुसार (जहाँतक मुझसे बन पड़ेगा) सहायता करूँगा। हे नाथ ! इस प्रकार समुद्रको बँधाइये, जिससे तीनों लोकोंमें आपका सुन्दर यश गाया जाय ॥२॥

एहिं सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी ॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा ॥३॥

इस बाणसे मेरे उत्तर तटपर रहनेवाले पापके राशि दुष्ट मनुष्योंका वध कीजिये। कृपालु और रणधीर श्रीरामजीने समुद्रके मनकी पीड़ा सुनकर उसे तुरंत ही हर लिया (अर्थात् बाणसे उन दुष्टोंका वध कर दिया) ॥ ३ ॥

देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा ॥४॥

श्रीरामजीका भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गया। उसने उन दुष्टोंका सारा चरित्र प्रभुको कह सुनाया। फिर चरणोंकी वन्दना करके समुद्र चला गया ॥ ४ ॥

छं०—निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

समुद्र अपने घर चला गया, श्रीरघुनाथजीको यह मत (उसकी सलाह) अच्छा लगा। यह चरित्र कलियुगके पापोंको हरनेवाला है, इसे तुलसीदासने अपनी बुद्धिके अनुसार गाया है। श्रीरघुनाथजीके गुणसमूह सुखके धाम, सन्देहका नाश करनेवाले और विषादका दमन करनेवाले हैं। अरे मूर्ख मन ! तू संसारका सब आशा-भरोसा त्याग कर निरन्तर इन्हें गा और सुन।

दो०—सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥६०॥

श्रीरघुनाथजीका गुणगान सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलोंका देनेवाला है। जो इसे आदरसहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन) के ही भवसागरको तर जायँगे॥ ६०॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
पञ्चमः सोपानः समाप्तः।

कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका
यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ।

(सुन्दरकाण्ड समाप्त)

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

दोहावली

ध्यान

राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर ॥ १ ॥

भावार्थ—भगवान् श्रीरामजीकी बायीं ओर श्रीजानकीजी हैं और दाहिनी ओर श्रीलक्ष्मणजी हैं—यह ध्यान सम्पूर्णरूपसे कल्याणमय है। हे तुलसी ! तेरे लिये तो यह मनमाना फल देनेवाला कल्पवृक्ष ही है ॥ १ ॥

सीता लखन समेत प्रभु सोहत तुलसीदास ।
हरषत सुर बरषत सुमन सगुन सुमंगल वास ॥ २ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी-के सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सुशोभित हो रहे हैं, देवतागण हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं। भगवान्‌का यह सगुण ध्यान सुमङ्गल—परम कल्याणका निवासस्थान है ॥ २ ॥

पंचबटी बट बिटप तर सीता लखन समेत ।
सोहत तुलसीदास प्रभु सकल सुमंगल देत ॥ ३ ॥

भावार्थ—पंचवटीमें वटवृक्षके नीचे श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी-समेत प्रभु श्रीरामजी सुशोभित हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह ध्यान सब सुमङ्गलोंको देता है ॥ ३ ॥

राम-नाम-जपकी महिमा

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत ।
राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत ॥ ४ ॥

भावार्थ—श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामजी चित्रकूटमें सदा-सर्वदा निवास करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे रामनामका जप जपनेवालेको इच्छित फल देते हैं ॥ ४ ॥

पय अहार* फल खाइ जपु राम नाम षट मास।
सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ॥ ५ ॥

भावार्थ—छः महीनेतक केवल दूधका आहार करके अथवा फल खाकर रामनामका जप करो। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसा करनेसे सब प्रकारके सुमङ्गल और सब सिद्धियाँ करतलगत हो जायँगी (अर्थात् अपने-आप ही मिल जायँगी ॥ ५ ॥

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ॥ ६ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर प्रकाश (लौकिक एवं पारमार्थिक ज्ञान) चाहता है तो मुखरूपी दरवाजेकी जीभरूपी देहलीपर रामनामरूपी [हवाके झोंके अथवा तेलकी कमीसे कभी न बुझनेवाला नित्य प्रकाशमय] मणिदीप रख दो (अर्थात् जीभके द्वारा अखण्डरूपसे श्रीरामनामका जप करता रह) ॥ ६ ॥

हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम ॥ ७ ॥

---

* किसी-किसी प्रतिमें 'पय अहाइ' पाठ मिलता है, जिसका अर्थ होगा '[चित्रकूटमें स्थित] पयस्विनी नदीमें स्नान करके'। 'पय अहार' और 'फल खाइ' पाठ लेनेसे 'अहार' और 'खाइ' में जो द्विरुक्ति [illegible] होती है, उसीके निवारणके लिये सम्भवतः 'अहार' के स्थानमें 'अहाइ' संशोधन पीछेसे किया गया है; किन्तु इस प्रकारके प्रयोग गोस्वामीजीने अन्यत्र भी किये हैं—देखिये रामचरितमानस अयोध्याकाण्डका दोहा १८८—

पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग ॥

भावार्थ—हृदयमें निर्गुण ब्रह्मका ध्यान, नेत्रोंके सामने प्रथम तीन दोहोंमें कथित सगुण स्वरूपकी सुन्दर झाँकी और जीभसे सुन्दर रामनामका जप करना। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह ऐसा है मानो सोनेकी सुन्दर डिबियामें मनोहर रत्न सुशोभित हो ॥ ७ ॥

सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं निर्गुन मन ते दूरि।
तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन मूरि ॥ ८ ॥

भावार्थ—सगुणरूपके ध्यानमें तो प्रीतियुक्त रुचि नहीं है और निर्गुण-स्वरूप मनसे दूर है (यानी समझमें नहीं आता)। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसी दशामें रामनाम-स्मरणरूपी संजीवनी बूटीका सदा सेवन करो ॥ ८ ॥

एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ॥ ९ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—देखो, श्रीरघुनाथजीके नाम (राम) के दोनों अक्षरोंमें एक—'र' तो (रेफ र्‍ के रूपमें) सब वर्णोंके मस्तकपर छत्रकी भाँति विराजता है और दूसरा 'म' (अनुस्वार ं के रूपमें) सबके ऊपर मुकुटमणिके समान सुशोभित होता है ॥ ९ ॥

नाम राम को अंक है सब साधन हैं सून।
अंक गएँ कछु हाथ नहिं अंक रहें दस गून ॥ १० ॥

भावार्थ—श्रीरामजीका नाम अङ्क है और सब साधन शून्य (०) हैं। अङ्क न रहनेपर तो कुछ भी हाथ नहीं लगता, परन्तु शून्यके पहले अंक आनेपर वे दसगुने हो जाते हैं (अर्थात् रामनामके जपके साथ जो साधन होते हैं, वे दसगुने लाभदायक हो जाते हैं; परन्तु रामनामसे हीन जो साधन होता है, वह कुछ भी फल नहीं देता) ॥ १० ॥

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु ॥ ११ ॥

भावार्थ—कलियुगमें श्रीरामजीका नाम कल्पवृक्ष (मनचाहा पदार्थ देनेवाला) है और कल्याणका निवास (मुक्तिका घर) है, जिसको स्मरण करनेसे तुलसीदास भाँगसे (विषयमदसे भरी और दूसरोंको भी

विषयमद उपजानेवाली साधुओंद्वारा त्याज्य स्थितिसे) बदलकर तुलसीके समान (निर्दोष, भगवान्‌का प्यारा, सबका आदरणीय और जगत्‌को पावन करनेवाला) हो गया ॥ ११ ॥

राम नाम जपि जीहँ जन भए सुकृत सुख सालि।
तुलसी इहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि ॥१२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि, जीभसे रामनामका जप करके लोग पुण्यात्मा और परम सुखी हो गये; परन्तु इस नाम-जपमें जो आलस्य करते हैं, उन्हें तो आज या कल नष्ट ही हुआ समझो ॥ १२ ॥

नाम गरीबनिवाज को राज देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं घुरबिनिआ की बानि ॥१३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि गरीबनिवाज (दीनबन्धु) श्रीरामजीका नाम ऐसा है, जो जपनेवालेको भगवान्‌का निज जन जानकर राज्य (प्रजापतिका पद या मोक्ष-साम्राज्यतक) दे डालता है। परन्तु यह मन ऐसा अविश्वासी और नीच है कि घूरे (कूड़ेके ढेर) में पड़े दाने चुगनेकी ओछी आदत नहीं छोड़ता (अर्थात् गंदे विषयोंमें ही सुख खोजता है) ॥ १३ ॥

कासीं बिधि बसि तनु तजें हठि तनु तजें प्रयाग।
तुलसी जो फल सो सुलभ राम नाम अनुराग ॥१४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि काशीजीमें [पापोंसे बचते हुए] विधिवत् निवास करके शरीर त्यागनेपर और तीर्थराज प्रयागमें हठसे शरीर छोड़नेपर जो (मोक्षरूपी) फल मिलता है, वह रामनाममें अनुराग होनेसे सुगमतासे मिल जाता है। [यही नहीं, अनुरागपूर्वक रामनामके जापसे तो मोक्षके आधार साक्षात् भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है] ॥ १४ ॥

मीठो अरु कठवति भरो रौताई अरु छेम।
स्वारथ परमारथ सुलभ राम नाम के प्रेम ॥१५॥

भावार्थ—(१) मीठा पदार्थ (अमृत) भी हो और कठौता भरकर मिले, (२) राज्यादि अधिकार भी प्राप्त हों और क्षेम-कुशल रहे (अर्थात्

अभिमान और भोगोंसे वचकर रहा जाय) और (३) स्वार्थ भी सधे तथा परमार्थ भी सम्पन्न हो—ऐसा होना बहुत ही कठिन है; परन्तु श्रीरामनामके प्रेमसे ये परस्परविरोधी दुर्लभ बातें भी सुलभ हो जाती हैं (अर्थात् रामनाममें प्रेम होनेसे मधुर सुख भी मिलते हैं और वे दुःख-रहित भरपूर होते हैं; राज्य भी मिल सकता है और उसमें अभिमान तथा विषयासक्तिका अभाव होनेके कारण गिरनेकी भी गुंजाइश नहीं रहती, पारमार्थिक स्थितिपर अचल रहते हुए भी राज्यशासन किया जा सकता है और परमार्थ ही स्वार्थ बन जाता है) ॥ १५ ॥

राम नाम सुमिरत सुजस भाजन भए कुजाति ।
कुतरुक सुरपुर राजमग लहत भुवन बिख्याति ॥१६॥

भावार्थ—रामनामका स्मरण करनेसे नीच जाति या नीच स्वभाव-वाले भी सुन्दर कीर्तिके पात्र हो गये । स्वर्गके राजमार्गपर स्थित बुरे वृक्ष भी त्रिभुवनमें ख्याति पा जाते हैं ॥ १६ ॥

स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम परमारथ न प्रवेस ।
राम नाम सुमिरत मिटहिं तुलसी कठिन कलेस ॥१७॥

भावार्थ—जिन लोगोंको सांसारिक सुख सपनेमें भी नहीं मिलते और परमार्थमें—मोक्षप्राप्तिके मार्गमें जिनका प्रवेश नहीं है, तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामनामका स्मरण करनेसे उनके भी कठिन क्लेश मिट जाते हैं (अर्थात् उनके स्वार्थ-परमार्थ दोनोंकी सिद्धि सहजहीमें हो जाती है) ॥१७॥

मोर मोर सब कहँ कहसि तू को कहु निज नाम ।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम ॥१८॥

भावार्थ—तू सबको मेरा-मेरा कहता है, परन्तु यह तो बता कि तू कौन है ? और तेरा अपना नाम क्या है ? तुलसीदासजी कहते हैं कि अब या तो तू इसको (नाम और रूपके रहस्यको) सुन और समझकर मौन हो जा (मेरा-मेरा कहना छोड़कर अपने स्वरूपमें स्थित हो जा) या श्रीरामजीका नाम जप ॥ १८ ॥

हम लखि लखहि हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जपु नीच ॥१९॥

भावार्थ—[एक साधनहीन 'अलखिया' साधु केवल 'अलख-अलख' चिल्लाया करता था, उसे फटकारते हुए तुलसीदासजी कहते हैं कि] तू पहले अपने स्वरूपको जान फिर अपने यथार्थ, 'अपने' ब्रह्मके स्वरूपका अनुभव कर, तदनन्तर अपने और ब्रह्मके बीचमें रहनेवाली मायाको पहचान। अरे नीच! [इन तीनोंको समझे बिना] तू उस अलख परमात्माको क्या समझ सकता है? अतः ['अलख-अलख' चिल्लाना छोड़कर] राम-नामका जप कर ॥ १९ ॥

राम नाम अवलंब बिनु परमारथ की आस।
बरषत बारिद बूँद गहि चाहत चढ़न अकास ॥ २० ॥

भावार्थ—जो रामनामका सहारा किये बिना ही परमार्थकी—मोक्षकी आशा करता है, वह तो मानो बरसते हुए बादलकी बूँदको पकड़कर आकाशमें चढ़ना चाहता है (अर्थात् जैसे वर्षाकी बूँदको पकड़कर आकाशपर चढ़ना असम्भव है, वैसे ही रामनामका जप किये बिना परमार्थकी प्राप्ति असम्भव है) ॥ २० ॥

तुलसी हठि हठि कहत नित चित सुनि हित करि मानि।
लाभ राम सुमिरन बड़ो बड़ी बिसारें हानि ॥२१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी नित्य-निरन्तर बड़े आग्रहके साथ कहते हैं कि हे चित्त! तू मेरी बात सुनकर उसे हितकारी समझ—रामका स्मरण ही बड़ा भारी लाभ है और उसे भुलानेमें ही सबसे बड़ी हानि है ॥ २१ ॥

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु ॥ २२ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि तू कुसङ्गतिको और चित्तके सारे बुरे विचारोंको त्याग कर रामका बन जा और उनके नामका जप कर। ऐसा करनेसे तेरी अनेकों जन्मोंकी बिगड़ी हुई स्थिति आज अभी सुधर जा सकती है ॥ २२ ॥

प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम राम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम ॥ २३ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि तुम प्रेम, विश्वास और विधिके साथ [नामापराधोंसे बचते हुए] राम-राम-राम जपो; इससे तुम्हारा आदि, मध्य और अन्त तीनों ही कालोंमें कल्याण है ॥ २३ ॥

दंपति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह।
तुलसी हर हित बरन सिसु संपति सहज सनेह ॥ २४ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि रस और रसना (जीभ) पति-पत्नी हैं, दाँत कुटुम्बी हैं, मुख सुन्दर घर है; श्रीमहादेवजीके प्यारे 'र' और 'म' ये दो अक्षर दो मनोहर बालक हैं और सहज स्नेह ही सम्पत्ति है। [परमार्थ-साधककी ऐसी ही गृहस्थी होनी चाहिये] ॥ २४ ॥

बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास ॥ २५ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीकी भक्ति वर्षा ऋतु है, उत्तम सेवकगण (प्रेमी भक्त) धान हैं और रामनामके दो सुन्दर अक्षर ('रा' और 'म') सावन-भादोंके महीने हैं (अर्थात् जैसे वर्षा-ऋतुके श्रावण, भाद्रपद—इन दो महीनोंमें धान लहलहा उठता है, वैसे ही भक्तिपूर्वक श्रीरामनामका जप करनेसे भक्तोंको आत्यन्तिक सुख मिलता है)२५

राम नाम नर केसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ॥ २६ ॥

भावार्थ—श्रीरामनाम नृसिंहभगवान् है, कलियुग हिरण्यकशिपु है और श्रीरामनामका जप करनेवाले भक्तजन प्रह्लादजीके समान हैं जिनकी वह (रामनामरूपी नृसिंह भगवान्) देवताओंको दुःख देनेवाले हिरण्यकशिपु (भक्तिके बाधक कलियुग) को मारकर रक्षा करेगा ॥ २६ ॥

राम नाम कलि कामतरु राम भगति सुरधेनु।
सकल सुमंगल मूल जग गुरु पद पंकज रेनु ॥ २७ ॥

भावार्थ—कलियुगमें रामनाम मनचाहा फल देनेवाले कल्पवृक्षके

समान है, रामभक्ति मुँहमाँगी वस्तु देनेवाली कामधेनु है और श्रीसद्गुरुके चरणकमलकी रज संसारमें सब प्रकारके मङ्गलोंकी जड़ है ॥ २७ ॥

राम नाम कलि कामतरु सकल सुमंगल कंद।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग पग परमानंद ॥ २८ ॥

भावार्थ—श्रीरामका नाम कलियुगमें कल्पवृक्षके समान है और सब प्रकारके श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ मङ्गलोंका परम सार है। रामनामके स्मरणसे ही सब सिद्धियाँ वैसे ही प्राप्त हो जाती हैं, जैसे कोई चीज़ हथेलीमें ही रक्खी हो और पद-पदपर परम आनन्दकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥

जथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास।
राम नाम सब धरममय जानत तुलसीदास ॥ २९ ॥

भावार्थ—जैसे सारी धरती बीजमय है, सारा आकाश नक्षत्रोंका निवास (नक्षत्रमय) है, वैसे ही रामनाम सर्वधर्ममय है—तुलसीदास इस रहस्यको जानते हैं ॥ २९ ॥

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किये मन मीन ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो समस्त (भोग और मोक्षकी भी) कामनाओंसे रहित हैं और श्रीरामजीके भक्ति-रसमें डूबे हुए हैं, उन (नारद, वशिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास आदि) महात्माओंने भी रामनामके सुन्दर प्रेमरूपी अमृतसरोवरमें अपने मनोंको मछली बना रक्खा है (अर्थात् नामामृतके आनन्दको वे क्षणभरके लिये भी त्यागनेमें मछलीकी भाँति व्याकुल हो जाते हैं) ३०

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
राम चरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि ॥ ३१ ॥

भावार्थ—[निर्गुण] ब्रह्म और [सगुण] रामसे भी रामनाम बड़ा है, वह वर देनेवाले देवताओंको भी वर देनेवाला है। महान् ईश्वर श्रीशङ्करजीने इस रहस्यको मनमें समझकर ही रामचरित्रके सौ करोड़ श्लोकोंमेंसे [चुनकर दो अक्षरके इस] रामनामको ही ग्रहण किया ३१

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ ॥ ३२ ॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीने तो शबरी, [गीधराज]जटायु आदि अपने श्रेष्ठ सेवकोंको ही सुगति दी; परन्तु रामनामने तो असंख्य दुष्टोंका उद्धार कर दिया । रामनामकी यह गुणगाथा वेदोंमें प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥

राम नाम पर नाम तें प्रीति प्रतीति भरोस ।
सो तुलसी सुमिरत सकल सगुन सुमंगल कोस ॥ ३३ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो रामनामके परायण है और रामनाममें ही जिसका प्रेम, विश्वास और भरोसा है, वह रामनामका स्मरण करते ही समस्त सद्गुणों और श्रेष्ठ मङ्गलोंका खजाना बन जाता है ॥ ३३ ॥

लंक बिभीषन राज कपि पति मारुति खग मीच ।
लही राम सों नाम रति चाहत तुलसी नीच ॥ ३४ ॥

भावार्थ—श्रीरामजीसे विभीषणने लङ्का पायी, सुग्रीवने राज्य प्राप्त किया, हनुमान्‌जीने सेवककी पदवी या प्रतिष्ठा पायी और पक्षी जटायुने देवदुर्लभ उत्तम मृत्यु प्राप्त की; परन्तु नीच तुलसीदास तो उन प्रभु श्रीरामसे केवल रामनाममें प्रेम ही चाहता है ॥ ३४ ॥

हरन अमंगल अघ अखिल करन सकल कल्यान ।
रामनाम नित कहत हर गावत बेद पुरान ॥ ३५ ॥

भावार्थ—रामनाम सब अमङ्गलों और पापोंको हरनेवाला तथा सब कल्याणोंका करनेवाला है । इसीसे श्रीमहादेवजी सर्वदा श्रीरामनामको रटते रहते हैं और वेद-पुराण भी नामका ही गुण गाते हैं ॥ ३५ ॥

तुलसी प्रीति प्रतीति सों राम नाम जप जाग ।
किएँ होइ बिधि दाहिनो देइ अभागेहि भाग ॥ ३६ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रेम और विश्वासके साथ राम-नाम-जपरूपी यज्ञ करनेसे विधाता अनुकूल हो जाता है और अभागे मनुष्यको भी परम भाग्यवान् बना देता है ॥ ३६ ॥

ग्रन्थालय
आगत क्रमांक

जल थल नभ गति अमित अति अग जग जीव अनेक।
तुलसी तो से दीन कहँ राम नाम गति एक ॥ ३७॥

भावार्थ—जगत्‌में चर-अचर अनेक प्रकारके असंख्य जीव हैं और चरोंमें भी कुछ ऐसे हैं जिनकी जलमें गति है, कुछकी पृथ्वीपर गति है और कुछकी आकाशमें गति है; परन्तु हे तुलसीदास ! तुझ-सरीखे दीनके लिये तो रामनाम ही एकमात्र गति है ॥ ३७ ॥

राम भरोसो राम बल राम नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास ॥ ३८॥

भावार्थ—तुलसीदास यही माँगते हैं कि मेरा एकमात्र रामपर ही भरोसा रहे, रामहीका बल रहे और जिसके स्मरणमात्रहीसे शुभ, मङ्गल और कुशलकी प्राप्ति होती है, उस रामनाममें ही विश्वास रहे ॥ ३८ ॥

राम नाम रति राम गति राम नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल दुहुँ दिसि तुलसीदास ॥ ३९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—जिसका रामनाममें प्रेम है, राम ही जिसकी एकमात्र गति हैं और रामनाममें ही जिसका विश्वास है, उसके लिये रामनामका स्मरण करनेसे ही दोनों ओर (इस लोकमें और परलोकमें) शुभ मङ्गल और कुशल है ॥ ३९ ॥

रामप्रेमके बिना सब व्यर्थ है

रसना साँपिनि बदन बिल जे न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि बिधाता बाम ॥ ४०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो श्रीहरिका नाम नहीं जपते उनकी जीभ सर्पिणीके समान केवल विषय-चर्चारूपी विष उगलनेवाली और मुख उसके बिलके समान है। जिसका राममें प्रेम नहीं है, उसके लिये तो विधाता वाम ही है (अर्थात् उसका भाग्य फूटा ही है) ॥ ४० ॥

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक